Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

संस्थापक–सम्पादक
यशदेव शल्य

सम्पादक
अम्बिकादत्त शर्मा
प्रदीप कुमार खरे

उन्मीलन

मानसिक हिन्द स्वराज का वैतालिक
दार्शनिक षाण्मासिक

वर्ष 36, अंक 2
जुलाई-दिसम्बर, 2022

CC0. In Public Domain. Prof. Ambikadatta Sharma Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

वर्ष 36, अंक 2 जुलाई–दिसम्बर, 2022

उन्मीलन

मानसिक हिन्दस्वराज का वैतालिक
दार्शनिक षाण्मासिक

संस्थापक-सम्पादक
यशदेव शल्य

सम्पादक
अम्बिकादत्त शर्मा
प्रदीप कुमार खरे

दर्शन प्रतिष्ठान
जयपुर

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

परामर्शदाता

1. **रामजी सिंह**, 104, सन्याल इन्क्लेव, बुद्धमार्ग, पटना–800001
2. **अशोक वाजपेयी**, सी–60, अनुपम को–ऑपरेटिव ग्रुप हाउसिंग सोसायटी, वसुन्धरा एन्क्लेव, दिल्ली–110096
3. **रमेशचन्द्र शाह**, एम. 4, निराला नगर, भदभदा रोड, भोपाल–462003
4. **अशोक वोहरा**, सी–748, विकासपुरी, नई दिल्ली–110018

संस्थापक-सम्पादक

यशदेव शल्य

सम्पादक

1. **अम्बिकादत्त शर्मा**, सी.–37, गौर नगर, विश्वविद्यालय परिसर, सागर–470003 दूरभाष 07582–293668 मो. 09406519498
2. **प्रदीप कुमार खरे**, आर.बी. 72, इण्डस गार्डन, गुलमोहर, भोपाल–462039, दूरभाष 0755–2427461, मो. 09425029308

ISSN 0974 0053
UNMEELAN (Refereed Journal), U.G.C. Care List : Arts & Humanities, Sl.No. 310

वार्षिक शुल्क
व्यक्तिगत : रु. 200/–
संस्थाएं : रु. 500/–

आजीवन शुल्क
व्यक्तिगत : रु. 5000/–
संस्थाएं : रु. 10000/–

आजीवन/वार्षिक सदस्यता हेतु राशि "प्रधान–सम्पादक – उन्मीलन" के पक्ष में बैंक ड्राफ्ट (सागर, म.प्र. पर देय) निम्न पते पर भेजें – अम्बिकादत्त शर्मा, दर्शन विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर–470003 (म.प्र.)

कमलनयन एवं अम्बिकादत्त शर्मा द्वारा **दर्शन प्रतिष्ठान**, पी–51 मधुवन पश्चिम, किसान मार्ग, जयपुर–302015 के लिए प्रकाशित।

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

अनुक्रमणिका

1. ज्ञान का वि–औपनिवेशीकरण : पाठ्यपुस्तकें, राष्ट्रवाद और साम्प्रदायिक इतिहास लेखन 5
विश्वनाथ मिश्र : कुलदीप शर्मा,

2. वाक्, विचार तथा व्यवहार : भर्तृहरीय दृष्टि 78
बलराम शुक्ल

3. यशदेव शल्य की तुलनात्मक दर्शन की अवधारणा 117
अनिल कुमार तिवारी

4. पुस्तक–समीक्षा 131
भारतीय मानस के वि–औपनिवेशीकरण की वैचारिक कार्ययोजना
वेद मित्र शुक्ल

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

लाठ सर्वोदय ग्रंथमाला

1.	संगीत और चिन्तन (शंकर पुरस्कार से सम्मानित)	–	मुकुंद लाठ	100.00
2.	धर्म–संकट	–	मुकुंद लाठ	200.00
3.	कर्म–चेतना के आयाम	–	मुकुंद लाठ	250.00
4.	क्या है?क्या नहीं है?	–	मुकुंद लाठ	150.00
5.	मूल्यतत्त्व–मीमांसा (शंकर, मंगलाप्रसाद तथा मूर्त्तिदेवी पुरस्कारों से सम्मानित)	–	यशदेव शल्य	200.00
6.	चिद्विमर्श	–	यशदेव शल्य	175.00
7.	तत्त्व–चिन्तन	–	यशदेव शल्य	200.00
8.	चित् की आत्म–गवेषणा	–	यशदेव शल्य	250.00
9.	काव्य–विमर्श	–	यशदेव शल्य	250.00
10.	मुख्य भारतीय तथा पाश्चात्य दर्शन–धाराएं	–	यशदेव शल्य भगवती	150.00

11. यशदेव शल्य की सभी मौलिक कृतियों का संग्रह अब 'यशदेव शल्य समग्र' शीर्षक से चार खण्डों में उपलब्ध है। प्रत्येक खण्ड का मूल्य 1,600/- तथा चारों खण्डों का मूल्य 6,400/- है। प्रकाशक :- डी.के. प्रिण्टवर्ल्ड (प्रा.) लि., वेदश्री, एफ- 395, सुदर्शन पार्क, नई दिल्ली-110015, दूरभाष 011-25453975

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

ज्ञान का वि-औपनिवेशीकरण : पाठ्यपुस्तकें, राष्ट्रवाद और साम्प्रदायिक इतिहास लेखन

विश्वनाथ मिश्र : कुलदीप शर्मा

पूरी दुनिया में और खासकर उपनिवेशित राष्ट्रों में महायुद्ध के बाद से ही ज्ञान का वि–औपनिवेशीकरण किसी फैशन की तरह प्रयुक्त होने वाला शब्द बनकर उभरा है। इस शब्द को महायुद्ध के पूर्व की जो विरासत प्राप्त थी और इसे जो महायुद्ध के बाद अर्थ प्राप्त हुआ उसमें उत्तर–वैश्वीकरण की अवस्था तक आते–आते अनेक अर्थ, सन्दर्भ जुड़ते चले गए। भारत में विगत आठ वर्षों में यह शब्द एक सुचिंतित अवधारणा बनने की राह पर डगमगाते हुए चल रहा है। इस शब्द में निहित अवधारणात्मक योजना यानि कि ज्ञान के वि–औपनिवेशीकरण के अभीष्ट को प्राप्त करने के लिए इसके पूर्वपक्ष औपनिवेशीकरण की प्रक्रिया को गहराई से समझ लेने कि आवश्यकता है।

औपनिवेशीकरण के विविध प्रारूप

सामान्यतः औपनिवेशीकरण को हम एक विजातीय तत्त्व के द्वारा किसी जाति पर राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और मानसिक अधिपत्य के रूप में देखते हैं। इसका सबसे प्रकट रूप यूरोपीय देशों का वह संजाल रहा है जिसमें उन्होंने दुनिया के अधिकांश देशों को गुलाम बना लिया था। उपनिवेशवाद के इसी प्रकट रूप के प्रभाव को निर्मूल करने के उपक्रम के एक रूप में हम आज वि–औपनिवेशीकरण शब्द का प्रयोग सबसे अधिक करते हैं। किन्तु, औपनिवेशीकरण के अन्य स्वरुप भी हैं और हमें उन पर भी विचार करना चाहिए। नेन्सी सुमेकर ने इस दृष्टि से 2015 में एक लेख लिखा था। लेख का नाम था – नेटिव अमेरिकन वेलमेन एंड द वर्ल्ड : इंडिजिनस एनकाउंटर्स एंड द कंटिनजेंसी ऑफ रेस। यह यूनिवर्सिटी ऑफ नॉर्थ कॅरोलिन प्रेस से छपी थी। इसमें उन्होंने बारह तरह की कोलोनियलिज्म की चर्चा की।

उन्मीलन – वर्ष 36, अंक 2, जुलाई–दिसम्बर 2022
ISSN-0974-0053
U.G.C. Care List : Arts & Humanities, SI.No. 310

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

- सेटलर कोलोनियलिज्म
- प्लांटर कोलोनियलिज्म
- एक्स्ट्रेक्टिव कोलोनियलिज्म
- ट्रेड कोलोनियलिज्म
- ट्रांसपोर्ट कोलोनियलिज्म
- इम्पीरियल पावर कोलोनियलिज्म
- नॉट इन माय बैकयार्ड कोलोनियलिज्म
- लीगल कोलोनियलिज्म
- रोगे कोलोनियलिज्म
- मिशनरी कोलोनियलिज्म
- रोमांटिक कोलोनियलिज्म और
- पोस्ट कोलोनियलिज्म

इसमें साइबर स्पेस कोलोनियलिज्म और आर्टिफिसियल इंटेलिजेंस कोलोनियलिज्म को भी जोड़ा जा सकता है। तभी यह वर्गीकरण अद्यतन और पूर्ण माना जायेगा। विशेषकर जब हम आर्टिफीसियल इंटेलिजेंस की ओर आते हैं और इसके विशिष्ट परिवर्त्य हाईब्रिडाइजेशन, आटोमेशन आदि पर विचार करते हैं कि यह सब किस ज्ञान से जुड़े हैं? यह सब दुनिया को कहाँ लेकर जायेंगे? इन सब के प्रभावों की मीमांसा के लिए क्या हमारे पास कोई वि–औपनिवेशीकरण के वास्तविक स्वरुप एवं चुनौतियों से वाकिफ हो पाने वाले प्रतिमान हैं,जो वास्तव में ज्ञान के वि–औपनिवेशीकरण से जुड़ा हुआ हो। यदि हम इस पक्ष से वाकिफ हुए बिना ही वि–औपनिवेशीकरण की चर्चा करते हैं और कोई प्रतिमान विकसित करते हैं तब हम वास्तव में उपर बताये गए औपनिवेशीकरण के चौदह प्रकारों में से ही किसी को बढ़ावा दे रहे होते हैं और भ्रम यह पाल लेते हैं कि हम वि–औपनिवेशीकरण की परियोजना को साध रहे हैं।

ज्ञान का वि– औपनिवेशीकरण : समस्या का वास्तविक स्वरुप एवं चुनौतियाँ

. वस्तुतः वि–औपनिवेशीकरणकी प्रक्रिया को हम एक ऐसी कार्ययोजना के रूप में देख सकते हैं जो बहुध्रुवीय, जटिल और चुनौतीपूर्ण हैं। हम इसकी शुरुआत कहाँ से करें ? यह प्रश्न भी आसान नहीं हैं। ऐसा इसीलिए कि पहले हमें यह तय करना होगा कि हम संस्कृति की स्वायतत्ता

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

को स्थापित करने के लिए संस्कृति के उद्‌विकासवादी दृष्टि को अपनाते हुए संस्कृति के प्रसारवादी दृष्टि से कितनी दूरी बनाये रख सकते हैं। और क्या ऐसा करना तथ्यात्मक दृष्टि से सही होगा या नहीं? वहीं दूसरी ओर यदि हम संस्कृति के प्रसारवादी दृष्टि का सहारा लेते हैं तब हमारे पास सांस्कृतिक स्वायतत्ता का विकल्प शेष रहेगा भी या नहीं। वास्तविकता यह है कि संस्कृति अपने किसी भी स्तर पर इस उद्‌विकास और प्रसार के सम्मिलित प्रभाव से मुक्त नहीं रही है। किन्तु, जब संस्कृतियों का संपर्क श्रेष्ठता के दावों के साथ आती और प्रकट होती है तब सांस्कृतिक स्वायतत्ता का एक प्रतिरोधी विमर्श भी आकार लेता ही है। सांस्कृतिक स्वायतत्ता का विमर्श विशुद्धतावादी दृष्टि से भी आकार ग्रहण करता है और किसी संस्कृति के संकरण के प्रतिरोध में भी सांस्कृतिक स्वायतत्ता का विमर्श उत्पन्न होता है। यहाँ जटिलता यह है कि हम होमोजिनाईजेशन को संकरण मानेंगे अथवा नहीं मानेंगे।

यदि हम होमोजिनाईजेशन को संकरण नहीं मानेंगे तब एक तरह का वि–औपनिवेशीकरण की बात कर रहे होंगे और यदि हम होमोजिनाईजेशन को भी संकरण का एक उपक्रम मान रहे होंगे तब हम दूसरी तरह के वि–औपनिवेशीकरण की बात कर रहे होंगे। इन सन्दर्भों का संज्ञान लेते हुए हमारे समक्ष प्रमुख रूप से चार प्रश्न उत्पन्न होते हैं।

1. आधुनिकता उपनिवेशवाद की जननी है या उपनिवेशवाद आधुनिकता का जनक है?
2. ज्ञान के केंद्रीकरण से उपनिवेशवाद का क्या सम्बन्ध है?
3. क्या हिंसात्मक ज्ञान के बिना उपनिवेशवाद संभव है?
4. केंद्रीकृत एवं मशीनी उत्पादन एवं अधिशेष उत्पादन की आंतरिक मांग उपनिवेशवाद है या नहीं?

यदि हम पाते हैं कि आधुनिकता उपनिवेशवाद की जननी है, इसने ज्ञान के केंद्रीकरण में योगदान दिया है और यह डार्विनवादी हिंसात्मक ज्ञान पर आधारित है। साथ ही हम यदि यह भी पाते हैं कि केंद्रीकृत मशीनी उत्पादन और प्रचुर अधिशेष उत्पादन के बिना भी उपनिवेशवाद संभव नहीं है। तब हमें ज्ञान के वि–औपनिवेशीकरण के लिए भी कुछ प्रश्नों पर विचार कर लेना चाहिए। जैसे

1. हम ज्ञान का वि–औपनिवेशीकरण केंद्रीकृत मशीनी उत्पादन और प्रचूर

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

अधिशेष उत्पादन के साथ करना चाहते हैं या हमारे पास कोई दूसरा मॉडल भी है।

2. विभिन्न राष्ट्रों में चल रही ज्ञान के वि–औपनिवेशिक परियोजनाओं का आपस में कोर्डियल रिलेशन है या कांट्रेडिक्ट्री रिलेशन है।

3. क्या हम हिंसात्मक ज्ञान के द्वारा ही मानसिक वि–औपनिवेशीकरण चाहते हैं या कोई अहिंसात्मक प्रतिमान हमारे पास है।

4. हम आंतरिक उपनिवेशवाद को किस दृष्टि से देखते हैं? अथवा हम ज्ञान के वि–औपनिवेशीकरण में पहचान, प्रतिनिधित्व, पुनर्वितरण एवं अतीत बोध के विभिन्न स्वरों में समायोजन कैसे करेंगे।

पुनः इस विषय को एक जीवंत विमर्श का रूप देने के लिए कुछ जरुरी अध्ययनों को समग्रता में समझना आवश्यक है। इस दृष्टि से के.सी. भट्टाचार्य का स्वराज इन आईडियाज, गाँधी का हिन्द स्वराज, सावरकर का हिंदुत्व, लाला लाजपत राय का अनहैप्पी इंडिया, फुले की गुलामगिरी, नेहरू की डिस्कवरी ऑफ इंडिया, अभय कुमार दुबे की अंग्रेजी का अलौकिक साम्राज्य और मणिन्द्र ठाकुर की ज्ञान की राजनीति उल्लेखनीय हैं। इस विषय पर अम्बिकादत्त शर्मा की भारतीय मानस का वि–औपनिवेशीकरण भी एक महत्त्वपूर्ण रचना है। किन्तु इस विषय की समग्र चुनौतियों एवं पहलुओं से परिचित होकर यदि उक्त रचनाओं को पढ़ा जाय तो बेहतर है। पुनः ज्ञान के वि–औपनिवेशीकरण पर चीन, पाकिस्तान, अफ्रीका आदि में क्या लिखा पढ़ा जा रहा है और वे इस विषय को कैसे देखते और दिखाते हैं, इसकी समझ भी जरुरी है। इस लिहाज से निम्नलिखित अध्ययन बेहद उपयोगी हो सकते हैं।

1. पेत्रिसिया रिचार्ड्स की डीकोलोनाईजिंग ग्लोबल स्टडीज
2. एडम ब्रांच की डीकोलोनाईजिंग द अफ्रीकन स्टडीज
3. हैड़ी मॉडस्टेड की डीकोलोनाईजिंग ऐंथ्रोपोलॉजी
4. जसमीजीन राणा की द केयर ऑफ मुस्लिम्स इन यूरोप
5. ए.जी.होपकिन्स की रीथिंकिंग डीकोलोनाईजिंग
6. ब्रेइन तुसुई की डीकोलोनाइजेशन एंड रेवोल्युशन : डिबेटिंग गांधीज्म इन रिपब्लिक चाइना

बहरहाल हम यहाँ पहले चीन फिर पाकिस्तान और अंत में भारत का उदाहरण लेते हैं। राइजिंग चाइना से होते हुए पीसफुल राइजिंग ऑफ

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

चाइना ज्ञान के वि–औपनिवेशीकरण का एक दावा भी प्रस्तुत करता है। अतीत में इसके पाँव मिडिल किंगडम थ्योरी पर आधारित है और भविष्य में इसका पाँव अमेरिकी अर्थव्यवस्था से छः गुना बड़ा होना है। यह एक कॉलोनीयल हेजीमोनी को तोड़कर दूसरा कॉलोनीयल हेजीमोनी तैयार करता है जिसमे मन और शरीर दोनों का यूरोपीय हो जाना है। एक दम से यह तुम्हारी लाठी की जगह मेरी लाठी वाली बात है। इसका आधार भी हिंसक ज्ञान, केंद्रीकृत मशीनी उत्पादन एवं अधिशेष उत्पादन ही है। इसमें साध्य–साधन का विवेक भी ठीक उसी तरह नहीं है जैसे पश्चिमी उपनिवेशवाद में नहीं था। आंतरिक रूप से यह 'हैजोमोनिक कंपटेटिव ट्रेड' पर आधारित है।

पाकिस्तान में ज्ञान का वि–औपनिवेशीकरण आंतरिक रूप से एग्रेसिव होमोजीनाइजेसन पर आधारित है, किन्तु बाह्य रूप से यह होमोजीनिक कंपटेटिव ट्रेड को अपनाने के काबिल नहीं हुआ है। इसलिए बाह्य रूप से यह इस्लामिक यूनिटी पर निर्भर करता है जो प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी के समय में बांग्लादेश की आजादी के साथ खोखला साबित हो जाता है। ऐसे में पाकिस्तान में ज्ञान के वि–औपनिवेशीकरण का सारा खेल इतिहास एवं भूगोल की इस्लामिक व्याख्या और इतिहास अनुशीलन, इतिहास पुनर्लेखन तक सीमित होकर रह जाता है। जबकि हकीकत यह है कि वह अपने पाठ्यपुस्तक में जितना भी यह साबित करले कि सिंधु घाटी के लोगों को हिन्दुओं ने बहुत सताया था; परन्तु वह इस सभ्यता के अतीत को इस्लामिक सभ्यता नहीं कह सकता है।

आईए अब बात करते हैं भारत की। अभी हाल में ही प्रधानमंत्री मोदी जी ने लाल किले से अपने अभिभाषण में भी इस बात का उल्लेख किया था कि हमें मानसिक वि– औपनिवेशीकरण की जरुरत है। तो क्या इस परियोजना में हमारा पूर्वपक्ष पाकिस्तान या चीन की ऐसी ही कोई योजना होनी चाहिए। यह एक ट्रैप है जो हमें कैच 22 सिचुएसन में डाल देता है। इसमें चीन के दबाव से उग्र हिंदुत्व के कलेवर में अपने ज्ञान के वि–औपनिवेशीकरण की परियोजना को हम संचालित नहीं कर सकते हैं। यह पाकिस्तान के संदर्भ में एक गैर जरुरी विकल्प भले ही साबित हो सकता हो। परन्तु, भारत–चीन और भारत–पाकिस्तान के बीच उग्रता में वृद्धि होती रहे यह तो स्वयं यूरोप केंद्रित विश्वदृष्टि की ही एक फलक है।

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

जबकि पाकिस्तान–भारत एवं बांग्लादेश में तो ज्ञान के वि–औपनिवेशीकरण की परियोजना में उस विभाजन को रद्द करना भी शामिल होना ही चाहिए जो स्वयं ब्रिटिश उपनिवेशवाद का परिणाम है। किन्तु, दुर्भाग्य से इस दिशा में इन तीनों की पहल दृष्टिगोचर होने लायक स्तर पर भी नहीं पहुंचा है।

भारत में ज्ञान के वि–ओउपनिवेशीकरण का मसला हालिया वर्षो में गाँधी बनाम काल्पनिक आदर्श, बुद्धिज्म बनाम वेदांत और यदि क्षेत्रीयता के आधार पर रेनेशा से जोड़कर देखे तो बंगाल बनाम महाराष्ट्र के दुश्चक्र में भी फँसा है और इस्लाम बनाम हिंदुत्व के दुश्चक्र में भी उलझ गया है। खासकर के इतिहास विषय में यह इतिहास की वीरभावोन्मुख व्याख्या एवं इतिहास की हिंसक व्याख्या से भी दबा जा रहा है। वीरभावोन्मुख इतिहास की व्याख्या में अड़चन यह है कि इसमें साम्राज्य की रक्षक और विस्तारक शक्तियाँ और शोषण के विरुद्ध वंचित तबकों की वीरतावादी शक्तियाँ अनेक पड़ाव पर एक दूसरे के विरुद्ध तलवार लेकर खड़ी हो जाती हैं। परन्तु, दोनों के पास ज्ञान के वि–औपनिवेशीकरण के अपने अपने मॉडल हैं। अतः यहाँ भारत में ज्ञान के वि–औपनिवेशीकरण के कुछ मॉडल की भी चर्चा कर लेना प्रासंगिकता है।

1. फूले एवं अम्बेडकर – बुद्ध
2. सावरकर एवं मराठी रेनेशा की एक विशिष्ट धारा
3. विवेकानंद एवं शंकराचार्य
4. गाँधी
5. वेदांत का मॉडल

वस्तुतः ज्ञान का वि–औपनिवेशीकरण भाषा के बदलाव का ही विषय नहीं है। यह तलवार का भी विषय नहीं हैं, बल्कि यह कलम और चरित्र का विषय है। यह ज्ञान के लोकतान्त्रिकीकरण का विषय है और साथ ही साथ जियोग्राफिकल इम्परेटिबिलिटी का विषय नहीं है, बल्कि मानवता का विषय है। यह संग्रहण का नहीं बल्कि वितरण का विषय है। यह अतीत में जीने का विषय नहीं है बल्कि अल्टरनेटिव फ्यूचर की सक्रिय–योजना का विषय है।

आज के जन संचार एवं तकनीकी क्रांति के युग में ज्ञान का वि–औपनिवेशीकरण बाजार–कॉर्पोरेट, पर्यावरण, लिंगभेद, पेटेंट एवं कॉपीराइट से जुड़ा विषय भी है। यह मशीन की जब लिंगुइस्टिक अंडरस्टैंडिंग और भी

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

बढ़ जायेगी तब एक नए कलेवर में उपस्थित होगा। अतः हमें उस पर भी विचार कर लेना चाहिए।

यदि हम इस विषय को इतिहास की पुनर्व्याख्या तक ही सीमित रखते हैं तब भी हमें डार्विनवादी इतिहास की व्याख्या जिसकी एक धारा पूंजीवाद और दूसरी धारा मार्क्सवाद है– उसकी विसंगतियों से भी बचना होगा। इसका एक सूत्र हमें रुतखेर ब्रेगमन की हालिया रचना ह्यूमनकाइंड : अ होपफुल हिस्ट्री में भी मिलती है। बहरहाल एशियाई दृष्टि से भारत के लिए जिस भी वि – औपनिवेशीकरण की योजना में अखंड भारत शामिल न हो, वैश्विक दृष्टि से गुणात्मक निःशस्त्रीकरण शामिल न हो और मानवीय दृष्टि से अहिंसक ज्ञान का उत्पादन उसका लक्ष्य न हों तो उसे ज्ञान के वि– औपनिवेशीकरण की योजना कही ही नहीं जा सकती है।

यहाँ अंत में यह जोड़ना आवश्यक है कि भारत एक विचित्र देश है। यहाँ सभी समुदायों का सम्बन्ध राजवंशों से भी निकल आता है और सभी अपने को किसी न किसी का किसी न किसी समय में शोषित भी बताते हैं। इसीलिए राष्ट्रवादी इतिहास लेखन को जितना भी महिमा मंडित किया जाये कोई ना कोई समूह इस पर उपनिवेशवादी और आधिपत्यवादी होने का दोष मढ़ ही देगा। अंतः हमें ज्ञान के वि–औपनिवेशीकरण के लिए इतिहास की मानवतावादी व्याख्या करनी होगी और ऑथेंटिक फ्यूचर के लिए अद्वैती सभ्यता दर्शन भी तैयार करना होगा।

आज अधिकांश राष्ट्र–राज्य शैक्षिक प्रणालियों को राष्ट्रीय पहचान और नागरिकता के निर्माण के प्रमुख कारक के रूप में देखते हैं। स्कूलों को युवाओं के लिए एक स्वीकृत राष्ट्रीय अतीत के साथ सामाजीकरण करने वाले उपक्रम की प्रमुख एजेंसी के तौर पर देखा जाता है और उस राष्ट्रीय अतीत को स्वीकृति प्रदान करने वाली मुख्य एजेंसी राज्य होती है। सामाजीकरण एक व्यक्ति को एक सामाजिक प्राणी बनने में सक्षम बनाता है और स्कूल इसे प्रदान करने में एक प्रमुख भूमिका निभाते हैं। यद्यपि यह 'पुराने' राष्ट्र–राज्यों में भी देखा जा सकता है जहाँ शिक्षा अक्सर आधिकारिक विचारधारा को दर्शाती है। हालाँकि ज्ञान का वि– औपनिवेशीकरण उत्तर औपनिवेशिक समाजों में भी मान्य है, जहां राष्ट्र– निर्माण इतना महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि यह अन्य सभी पहलुओं को पृष्ठभूमि में धकेल देता है। पाठ्यपुस्तक वास्तव में, प्रतिनिधित्व–विनियमन

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

की एक सूक्ष्म इकाई का गठन करती है, क्योंकि यह एक प्रमुख क्षेत्र है जहाँ राष्ट्र–राज्य के साथ–साथ इसके नागरिकों की कल्पना की गई पहचान व्यक्त की जाती है। दरअसल पाठ्यपुस्तकें न केवल 'राष्ट्र' की विशेष समझ को प्राकृतिक बनाने का काम करती हैं, बल्कि मौजूदा सामाजिक असमानताओं जैसे कि वर्ग, ग्रामीण, शहरी, स्थान, लिंग, जातीयता और धर्म को भी सुदृढ़ करती हैं।[1] किन्तु, जो विशिष्ट पहचान, आदत एवं व्यवहार पाठ्यपुस्तकें उत्पन्न करना चाहती हैं वह भी किसी न किसी प्रकार के समायोजन से प्रेरित होती हैं। जब तक जातियों एवं समाजों का स्वायत्त क्षेत्र उनके निर्भर क्षेत्र (डिपेंडेंट स्फीयर) की अपेक्षा अधिक व्यापक था तब तक विजातीय (अदर) एवं स्वजातीय (सेल्फ) का पार्थक्य जटिल समीकरण नहीं था। किन्तु, जैसे– जैसे स्वायत्त क्षेत्र की संक्रान्तिक सीमा रेखाएँ बढ़ती जाती हैं वैसे–वैसे निर्भर क्षेत्र से वह आक्रांत भी होती रहती है। यह प्रक्रिया इतिहास में कभी भी एकरेखीय नहीं रही है। मसलन ऐसा नहीं होता कि कोई जाति या समूह प्रभावित ही करती हो और स्वयं प्रभावित नहीं होती हो। ऐसा इसलिए कि यह सब सांस्कृतिक अन्तःक्रिया का क्षेत्र होता है जो द्विपक्षीय एवं बहुपक्षीय तो हो सकता है किन्तु एकपक्षीय हो ही नहीं सकता।

जातियों एवं समाजों के बीच पायी जाने वाली अन्तःक्रिया मित्र भाव से भी होती है और शत्रु भाव से भी संचालित होती है। विभिन्न संस्कृतियों के बीच मित्र भाव से संचालित सांस्कृतिक अन्तःक्रियाएँ (यह आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सैनिक आदि विभिन्न स्वरुप वाली हो सकती हैं) वर्चस्ववादी (हेजोमोनिक) नहीं होती हैं। ऐसी अन्तःक्रियाएँ भी अन्तः क्रियारत समूहों में वैचारिक, मानसिक, सांस्कृतिक एवं संस्थागत बदलावों एवं रूपान्तरणों को जन्म देती हैं। वस्तुतः सिखाने में सीखना एवं सीखने में सिखाना अन्तर्वलित होता है। शत्रु भाव से संचालित अन्तःक्रियाएँ जो प्रायः वीरभाव एवं वैरभाव से संचालित होती हैं, उनका स्वरुप वर्चस्ववादी होता है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वीरभाव एवं वैरभाव से संचालित अन्तःक्रियाएँ शत्रु पर वर्चस्व स्थापित करके उसके पहचान, आदत एवं व्यव्हार को तो बाद में बदलती हैं, पहले वह स्वयं अपने आप को ही बदल लेती है। यह ठीक वैसे ही है जैसे मनुष्य के शरीर का प्रतिरक्षा तंत्र स्वभावतः सक्रिय प्रतिरक्षा तंत्र हमें क्लान्त नहीं करता है। किन्तु, बाध्यतावश जब हमारे शरीर का प्रतिरक्षा तंत्र अधिक सक्रिय होता है तब हम क्लान्त हो जाते हैं। वीरभाव

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

और वैरभाव मनुष्य के मूल स्वाभाव नहीं हैं और न ही कोई मनुष्य सीमा पर तैनात जवान की तरह हर पल मृत्यु एवं शत्रु से सशंकित होकर जीता है या जीना चाहता है। सैन्य भाव प्राकृतिक गुण नहीं है, यह आगमिक गुण है।[2] इस आगमिक गुण को जब जातियाँ अथवा समाज प्रधान गुण बनाने के लिए सक्रिय हो जाती हैं तब वे स्वयं को उपनिवेशित करने लग जाती हैं और सबसे पहले उपनिवेशित होती हैं स्त्रियाँ एवं समाज के कमजोर समुदाय अथवा सदस्य।[3]

उपनिवेशीकरण का दूसरा पड़ाव सैन्य भाव से अर्जित उपलब्धियों के अनुरक्षण एवं संवर्धन से सम्बंधित है और इसमें मुद्रा, अधिशेष उत्पादन एवं बहुदेववाद से एकेश्वरवाद में संक्रमण सम्मिलित है। उल्लेखनीय है कि बहुदेववाद से एकेश्वरवाद में संक्रमण ने विभिन्न समाजों में पहले आन्तरिक रूप से रक्तपात एवं युद्ध को अंजाम दिया है और फिर एकेश्वरवाद के प्रसारवादी रवैये से जब सैन्यवाद, मुद्रा, अधिशेष उत्पादन का समीकरण जुड़ा हुआ है तब इसने पूरी धरती को रक्त से लाल कर दिया है। किन्तु,जब भी हम ज्ञान के वि–औपनिवेशीकरण की बात करते हैं, तब हमारा प्रतिपक्ष आधुनिक यूरोप के औपनिवेशिक वर्चस्व और उसके प्रभाव तक ही सीमित होकर रह जाता है। ऐसे में यह कि तब तक हम अपने भीतर एक अन्तरंग यूरोप को अपना मूल स्वाभाव भी मान रहे होते हैं और एक दूसरे तरह के यूरोप से मुक्त भी होना चाहते हैं। दूसरा, यह कि तब हम यह समझने की कोशिश नहीं कर रहे होते हैं कि ज्ञान के वि–औपनिवेशीकरण के लिए यह भी समझने की जरुरत है कि स्वयं यूरोप ने अपने को कैसे उपनिवेशीकृत किया और हम किन सजातीय प्रवृतियों में अन्तर्निहित औपनिवेशीकरण को पहचान कर उससे मुक्त हो सकते हैं।

इन तथ्यों को विस्तार से समझने के लिए हमें ज्ञान के वि–औपनिवेशीकरण के विचार का अंतर–सांस्कृतिक अध्ययन करना होगा। उदाहरण के लिए पाकिस्तान में भी ज्ञान के वि–औपनिवेशीकरण की चर्चा होती रही है और भारत में भी। पाकिस्तान में ज्ञान के वि–औपनिवेशीकरण की परियोजना को इस्लाम के ढाँचे में देखा जाता है। हाल के वर्षों में भारत में हिंदुत्व के ढाँचे के भीतर ज्ञान के वि–औपनिवेशीकरण कि चर्चा जोर–शोर से हो रही है। इन दोनों ही चर्चाओं में 'अदर' उपस्थित है और वह मित्र नहीं है। यहाँ तक कि वह

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

संबोध्य नहीं है। दूसरी ओर ज्ञान के वि–औपनिवेशीकरण की इस चर्चा में दोनों ही देशों में वे स्वर भी सम्मिलित नहीं हैं जो स्वयं को देशज औपनिवेशीकरण का शिकार समझते हैं। वस्तुतः भारत एवं पाकिस्तान के लिए ही नहीं अपितु सम्पूर्ण मानव जाति के लिए ज्ञान का वि–औपनिवेशीकरण आवश्यक है। इसे राष्ट्रीय या राष्ट्रवादी चश्मे से देखने का मतलब ही है कि हम एक तरह के उपनिवेशवाद के विरुद्ध दूसरी तरह के उपनिवेशवाद का सृजन करना चाहते हैं। ज्ञान के वि–औपनिवेशीकरण का मौलिक लक्ष्य जब तक बिकमिंग पर बीइंग की पुर्नस्थापना नहीं होगा, तब तक यह एक भटका हुआ प्रयास ही साबित होगा।

पाकिस्तान, संकीर्ण इस्लाम और ज्ञान का वि–औपनिवेशीकरण

गौरतलब है कि 1978 में पाकिस्तान में लागू की गई 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति' का उद्देश्य सबसे पहले 'इस्लाम के प्रति गहरी और स्थायी वफादारी और मुस्लिम राष्ट्रवाद की जीवंत चेतना' को बढ़ावा देना था।[4] वहीं 1986 की भारत की नई 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति' हमारे संविधान में निहित समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता और लोकतंत्र के लक्ष्यों को आगे बढ़ाने में शिक्षा की 'सांस्कृतिक भूमिका' को परिभाषित करती है। इससे इतर 1991 में पेश किए गए ब्रिटेन के विवादास्पद 'राष्ट्रीय पाठ्यचर्या' ने भी 'लोकतांत्रिक समाजों के मूल्यों' के समर्थन के रूप में मानविकी के अध्ययन की परिकल्पना की गई।[6] इन तीनों नीतियों में से प्रत्येक अतीत और वर्तमान के बीच इतिहास के अध्ययन और वर्तमान राष्ट्रीय विचारधारा और मूल्य प्रणालियों के बीच एक स्पष्ट संबंध बनाती है। उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि नवगठित राष्ट्र–राज्यों में शिक्षा का मुख्य उद्देश्य यकीनन बच्चों के बौद्धिक विकास के क्रम में "राष्ट्रीय एकता" को मजबूत करने या "एकीकरण" को आगे बढ़ाने के लिए अनुकूल समझा जाने वाला देश के अतीत के दृष्टिकोण को प्रसारित करना भी सम्मिलित है।[7] इस प्रक्रिया में इतिहास का शिक्षण और साथ ही लेखन एवं उसका पुनर्लेखन एक प्रमुख स्थान ग्रहण कर लेता है। हालाँकि इतिहास के लेखन या पुनर्लेखन में हमें इब्न खलदून के उक्त वक्तव्य को याद रखना चाहिए जहाँ वे कहते हैं कि 'पूर्वाग्रह और पक्षधरता आलोचनात्मक बुद्धि को दबाकर समालोचनात्मक अनुसन्धान को रोकती है।[8]

इस सम्बन्ध में भारत और पाकिस्तान में कुछ समानताओं को देखा जा सकता है जैसे– दोनों ही देश एक साथ स्वतंत्र हुए नवोदित राष्ट्र–राज्य

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

हैं तथा दोनों का उदय विभाजन के साथ हुआ। यद्यपि दोनों देशों ने एक साझा पहचान, इतिहास और विरासत को साझा करने के पश्चात् भी 'अतीत के विपरीत और परस्पर विरोधी विनियोग' को अपनाने का प्रयास किया है।[9] आजादी के 70 से अधिक वर्षों के बाद भी वे एक–दूसरे को संदेह की नजर से देखते हैं और यह उनके संबंधों और उनकी पहचान–निर्माण प्रक्रियाओं दोनों को प्रभावित करता है। इसके अतिरिक्त जातीय पहचान, धार्मिक पहचान, सांप्रदायिक पहचान, भाषाई पहचान इत्यादि के मामले में भी दोनों देशों में विभिन्न स्तरों पर आंतरिक विविधता इनकी विशेषता है। परन्तु, दोनों ही देशों में इतिहास इन विविध पहचानों से परे राष्ट्रीय एकता और नागरिकों के लिए एक राष्ट्रीय चरित्र निर्माण का प्राथमिक उपकरण बन गया है। हालांकि, देश की आंतरिक विविधता को आवश्यक रूप से समायोजित किए बिना नागरिकता के अपने संस्करण को लागू करने के लिए सरकार द्वारा इतिहास का (गलत) उपयोग किया जा सकता है, इससे इंकार नहीं किया जा सकता। ऐसे मामले भी देखे जा सकते हैं जहाँ अतीत की 'सांप्रदायिक घटनाओं' का उपयोग अराजक प्रचार में किया गया है, जिससे विभाजन और घृणा में इजाफा ही हुई है। पश्चिम में भी इतिहास की फर्जी व्याख्याओं का इस्तेमाल वास्तव में भेदभाव, नस्लवाद, यहूदी–विरोधी और जेनोफोबिया को सही ठहराने के लिए किया गया था। जबकि ऐतिहासिक विवादों में मानवाधिकारों को बंधक नहीं बनाना चाहिए। ऐतिहासिक घटनाओं की एकतरफा व्याख्या या विकृतियों को अल्पसंख्यकों के साथ भेदभाव, जेनोफोबिया और संघर्ष के नवीनीकरण की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।[10] इसका प्रभाव जनसंख्या के कुछ वर्गों को पृष्ठभूमि में धकेलने का होता है। ऐसे में इतिहास पुनर्लेखन का जोखिम एक ऐसा उपक्रम बन जाता है जिसमें ऐतिहासिक तथ्य विकृत अथवा मिथ्या हो जाते हैं। भारत पाकिस्तान के संदर्भ में इस तरह का पुनर्लेखन धर्म से जुड़ा हुआ है जिसने उन्नीसवीं शताब्दी में राष्ट्रीय आंदोलनों के उद्‌भव के बाद से नागरिकता की (पुनः) परिभाषा में एक प्रमुख भूमिका निभाई है।

राष्ट्रवाद हमेशा अतीत की भावना से घनिष्ठ रूप से जुड़ा रहा है। आम तौर पर एक राष्ट्र अतीत के रूप में ज्ञात एक सांस्कृतिक सामूहिकता के साथ पहचान के रूप में परिभाषित किया जाता है। राष्ट्रवाद हमेशा अतीत की धारणाओं और उन धारणाओं के आधार पर किए गए वर्तमान और

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

भविष्य के दावों के साथ जुड़ा हुआ रहता है। पाठ्यपुस्तकें एक तरीका प्रदान करती हैं जिसमें समकालीन समाजों में राष्ट्र, नागरिकता, आदर्श अतीत और वादा किए गए भविष्य को व्यक्त और प्रसारित किया जाता है। ऐसे में कोई आश्चर्य नहीं कि पाठ्यपुस्तक सामग्री अधिकांश देशों में तब राजनीतिक विवाद के केंद्र में आ जाते हैं,जब राष्ट्रीय एकता और अंतर्राष्ट्रीय गठबंधनों के औचित्य पर बातचीत की जा रही होती है। राष्ट्रवाद युद्ध की जिम्मेदारी, नागरिकों और उनके राज्यों के बीच संबंधों को दुनिया भर में सार्वजनिक स्मृति के दायरे में खड़ा करता है। स्कूल की पाठ्यपुस्तकें अतीत और वर्तमान के आख्यान को आकार देने के लिए महत्त्वपूर्ण युद्ध क्षेत्रों में से एक हैं। भारत और पाकिस्तान में समकालीन पाठ्यपुस्तकों की सामग्री और उन्हें अपनाये जाने के विवादों का विश्लेषण यहाँ राष्ट्र, राष्ट्रवाद और नागरिकता की प्रतिस्पर्धी और बदलती परिभाषाओं को प्रकट करता है। ज्ञान के वि–औपनिवेशीकरण का मामला जब ऐसे प्रतिस्पर्धी दावों को लेकर चलता है, तब उसके पास अपने बचाव के लिए एक ही तर्क होता है। वह तर्क यह है कि शक्ति प्राप्त करना वि–औपनिवेशीकरण का प्रथम सोपान है और शक्ति प्राप्त करने के मार्ग में पहचान वैविध्य एक बड़ी बाधा है। इस तर्क में पहचान वैविध्य को एकता प्राप्ति के लक्ष्य का विरोधी माना जाता है। परन्तु, ज्ञान के वि–औपनिवेशीकरण के लिए इस तर्क पर दो अलग–अलग दृष्टिकोण से विचार किया जाना आवश्यक है। प्रथम यह कि पहचान वैविध्य से जिन विभिन्न हितों एवं भूमिकाओं का सृजन होता है वे स्वयं पहचान आधारित होते हैं अथवा हितों एवं भूमिकाओं के विभेद से पहचान निर्मित होता है ? यदि पहचान से ही हितों एवं भूमिकाओं का सृजन होता है तब संभव है कि पहचान की संभाव्य एकरूपता (इसे कुछ लोग पहचान समायोजन भी कह सकते हैं) से हितों एवं भूमिकाओं में भी एकरूपता आ जाये। किन्तु, क्या किसी ऐसे समाज–विन्यास की परिकल्पना संभव है जहाँ सभी कृषक, नौकरशाह, राजनेता, पुरोहित या सैनिक हों। शरीर संरचना की ही भाँति समाज की भी संरचना होती है। हम अपने सम्पूर्ण शरीर को मात्र आँख, मुँह, नाक, हाँथ या पैर नहीं बना सकते हैं। उसी तरह हम सम्पूर्ण समाज को कृषक, नौकरशाह, राजनेता, पुरोहित या सैनिक नहीं बना सकते हैं। हम आँख और मुँह के पहचान की विशिष्टता को भी नकार नहीं सकते हैं। भले ही हम आँख और मुँह को कोई अन्य नाम दे दें, किन्तु इससे आँख

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

और मुँह की भूमिका बदल नहीं जाती है और न ही उनका स्वरुप। ठीक यही बात समाज रचना के क्षेत्र में या ज्ञान के वि–औपनिवेशीकरण के क्षेत्र में पाकिस्तान में इस्लाम और भारत में हिंदुत्व के साथ भी लागू होती है।

वस्तुतः इस्लाम और हिंदुत्व (प्रसंगवश अन्य संप्रदाय भी) पहचान वैविध्य से उत्पन्न पुनर्वितरण एवं प्रतिनिधित्व की मांग को, जो अपने मूल स्वरुप में आर्थिक, भौतिक एवं सामाजिक है; उसे आस्था से हल करना चाहते हैं। ऐसा करने के क्रम में इस्लाम और हिंदुत्व दोनों ही उन मूल मुद्दों को संबोधित ही नहीं कर रहे होते हैं जो पहचान से जुड़े हित एवं भूमिका में आरोपण से सम्बंधित होते हैं। मसलन इस्लाम यह नहीं बता पाता कि उनका भाई–चारा मोची कल्लू मियाँ को इमाम सिद्दीकी जैसा जीवन कैसे दे सकता है और हिंदुत्व यह नहीं बता पाता कि किसी माननीय से एक मिनट के पैर धुलवाकर एक महराइन कैसे मंदिर में पुजारिन बन सकती है।

यदि इसी प्रश्न को हम आधुनिक यूरोप के अतीत में देखें तब हम उस दूसरे तर्क पर आ जाते हैं जिसका संकेत पूर्व में किया गया है। यूरोप ने दुनिया को उपनिवेशित करने से पहले और साथ–साथ अपने पहचान वैविध्य को ईसाइयत, उद्योगवाद एवं शहरीकरण के बाध्यतामूलक दबाव, अर्थव्यवस्था एवं व्यापार की जरूरतों के हिसाब से विनियमित विशेषीकरण एवं दक्षता की मानक एकरूपता के जरिये नष्ट किया। आगे चलकर उसने इस एकरूपता से उपनिवेशित समाजों के वैविध्य को भी नष्ट करने का प्रयास किया। उसके इस प्रयास में भी साम्राज्यानुकूल नागरिकता, नागरिक चरित्र एवं व्यवहार उत्पन्न करने का उपक्रम सम्मिलित था। भौतिक रूप से उपनिवेशवाद की समाप्ति के बाद जो अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था और इसके विनियोजन के लिए अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं का उदय हुआ और जिसको उपनिवेशों ने स्वेच्छा या अनिच्छा से स्वीकार किया; उसमें उपनिवेशवाद के प्रभावी किन्तु न दिखने वाले और अब प्रिय लगने वाले बीज अन्तर्निहित थे। इसका परिणाम यह हुआ कि अब पाकिस्तान को और भारत को अपने देश में ही न्यूयॉर्क, लन्दन और पेरिस खड़ा करना था किन्तु उन्हें न्यूयॉर्क, लन्दन और पेरिस के शरीर पक्ष में ही रूचि थी और उस शरीर में वे इस्लाम और हिंदुत्व का मन भरना चाहते थे। इसे ही दोनों ओर से प्रभावी विद्वत् समूह द्वारा मानसिक वि–औपनिवेशीकरण कहा गया। यह तोप से फूल वर्षा की एक ऐसी जुगत थी जिसमें अपेक्षा तो की गयी थी बारूद का गंध नहीं होगा।

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

किन्तु, दूसरी ओर भारत और पाकिस्तान की राष्ट्रीय अस्मिता जो स्वयं उपनिवेशवाद की ही देन थी; वह दोनों तरफ से इतिहास में ही बारूदी सुरंग भी बिछा रही थी। ऐसा करते हुए यह दोनों ही एक दूसरे के साथ वैसा ही कर रहे थे जैसा कि कभी ब्रिटेन ने इनके इतिहास के साथ किया था।

इतिहासकारों के शोध की विषय–वस्तु का चयन, उनके द्वारा उपयोग किए जाने वाले विश्लेषण के ढाँचे, वे साक्ष्य जो वे खोजते हैं और जो प्रश्न वे अपने साक्ष्य में डालते हैं, उनसे वैचारिक रूप से संचालित, निर्मित और प्रभावित होते हैं। फिर भी एक विषय के रूप में इतिहास का मुख्य सिद्धांत वस्तुनिष्ठता और इस संबंध में उसके दावे होते हैं। यह एक संस्करण का दूसरे संस्करण के विरुद्ध प्रश्न नहीं है। ऐतिहासिक घटनाओं के अलग–अलग, यहाँ तक कि स्पष्ट रूप से विरोधाभासी बिंदु, विचार और स्पष्टीकरण हैं। ये परस्पर विरोधी दृष्टिकोण हमेशा अतीत की सामाजिक वास्तविकताओं की जटिलताओं और अंतर्विरोधों के पहलुओं को दर्शाते हैं। इतिहासकार के विचार वस्तुनिष्ठ वास्तविकता के साथ अधिक या कम मेल खाते हैं, जो उनके वैचारिक ढाँचे, उनकी जाँच के उपकरणों और तकनीकों, सूचना की उपलब्धता और उनकी राजनीति के जटिल परस्पर अन्तःक्रिया पर निर्भर करता है। पाठ्य–पुस्तक लेखन में इसका एक अधिक स्पष्ट और अतिरिक्त राजनीतिक आयाम उभरता है, क्योंकि इसके उत्पादन में अत्यधिक मात्रा में चयनात्मकता निहित है। यह राज्य प्रायोजित पाठ्य–पुस्तक में अधिक स्पष्ट हो जाता है।

उन्नीसवीं शताब्दी में राष्ट्रवादी आंदोलनों के उद्‌भव के बाद से दक्षिण एशिया में धर्म ने राष्ट्रीयता को (पुनः) परिभाषित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसी के साथ जब भारत में धर्माधारित द्विराष्ट्र के सिद्धांत की शुरुआत होती है तो यहाँ यह भी विचारणीय है कि जो लोग इस सिद्धांत की वकालत करते हैं उनकी शिक्षा अंग्रेजी में हुई थी। अतः क्या यह आश्चर्य नहीं कि ऐसे व्यक्ति जिनकी शिक्षा ब्रिटेन जैसे देश में हुई हो वे भी एक ऐसे राज्य की मांग कर रहे थे जिसकी बुनियाद धर्म के आधार पर तैयार हुई हो। हालाँकि हमें यह भी याद रखने की आवश्यकता है कि भारत में कांग्रेस की स्थापना के पश्चात् सन् 1889 में सर जॉन स्ट्रेची कैंब्रिज के स्नातकों को यह समझा रहे थे कि भारत नाम की कोई ऐतिहासिक हस्ती या देश इस धरती पर है ही नहीं।[11] जो भी मसला हो जिन्ना ने स्पष्ट रूप से मुसलमानों के

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

लिए एक अलग राज्य के विचार के पक्ष में अपने सह–धर्मवादियों के समर्थन को आकर्षित करने के लिए इस्लाम को एक शक्ति संचय के बल के रूप में इस्तेमाल किया। परिणामस्वरूप, इस्लाम ने पाकिस्तान में एक वैचारिक ध्रुवीकरण की भूमिका निभाई, भले ही यह सवाल वास्तव में कभी हल नहीं हुआ कि क्या पाकिस्तान मुसलमानों के लिए एक देश होना चाहिए या एक मुस्लिम देश।

साम्प्रदायिकता एक ऐसी अवधारणा है जो उपमहाद्वीप में धर्म के इस प्रयोग का समुचित वर्णन करती है। संक्षेप में, यह धारणा राष्ट्रीयता की परिभाषा में मुख्य घटक के रूप में धर्म के उत्थान को संदर्भित करती है, और इसके साथ 'अन्य' के बहिष्कार को इंगित करती है जिन्हें प्रथम श्रेणी के नागरिक की स्थिति तक पहुँच से वंचित किया गया है। उपमहाद्वीप में इतिहास के सांप्रदायिकरण की प्रक्रिया ने पाकिस्तान और भारत दोनों में धार्मिक उग्रवाद को जन्म दिया है। दोनों देशों में धार्मिक उग्रवाद उपमहाद्वीप के इतिहास के सांप्रदायिक संस्करण से तर्क ग्रहण करता है और मुसलमानों के शासकों और हिंदू शासितों के रूप में ऐतिहासिक विभाजन पर अपनी कहानी बनाता है। लेकिन दिलचस्प बात यह है कि न तो किसी भारतीय और न ही किसी पाकिस्तानी इतिहासकार ने इस क्षेत्र में इतिहास का सांप्रदायीकरण करना शुरू किया था, बल्कि यह एक ब्रिटिश इतिहासकार जेम्स मिल द्वारा किया गया था। 1817 में जेम्स मिल ने अपनी पुस्तक हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इंडिया में पहली बार भारतीय उपमहाद्वीप के इतिहास को हिंदू, मुस्लिम और ब्रिटिश काल में विभाजित किया।[12] पाकिस्तान में इतिहास का सांप्रदायीकरण 1950 के दशक के अंत और 1960 के दशक की शुरुआत में आधिकारिक संरक्षण में शुरू हुआ। हालाँकि, यह जनरल जिया–उल–हक के शासनकाल में अपने इस्लामीकरण परियोजना के हिस्से के रूप में पाठ्यपुस्तकों में व्यवस्थित रूप से पेश किया गया था।

इसके विपरीत, भारत में धर्मनिरपेक्षता आधिकारिक तौर पर प्रमुख विचारधारा बनी हुई है जिसमें हिंदुत्व धीरे–धीरे पैठ जमा रहा है। भारत में धर्मनिरपेक्षता को सभी धर्मों के प्रति समान व्यवहार के रूप में परिभाषित किया गया है और इस प्रकार यह राज्य और चर्च के बीच सख्त अलगाव के फ्रांसीसी मॉडल से अलग है। यह सिद्धांत सभी भारतीयों को एक साझा

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

नागरिकता की परिभाषा में समान रूप से शामिल करने की अनुमति देता है, चाहे वह किसी भी धर्म का हो। यह हिंदुत्व की उस अवधारणा के बिल्कुल विपरीत है, जो राष्ट्रीयता को धर्म के आधार पर परिभाषित करती है तथा जिसे स्वयंसिद्ध हिंदू राष्ट्रवादियों द्वारा प्रचारित किया गया है। 1980 के दशक से देश में उनका बढ़ता प्रभाव महसूस किया गया है, क्योंकि ये समूह सामाजिक और राजनीतिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के 'सांप्रदायिकीकरण' की दिशा में काम कर रहे थे। पिछले चार दशकों से हिंदू साम्प्रदायिकता गहराती जा रही है और बढ़ रही है। 1980 के दशक की शुरुआत से विभिन्न नए तत्त्व, विशेषतः संस्कृति, हिंदू सांप्रदायिकता के दायरे में प्रवेश कर गई हैं तथा इसको विस्तार और वैधता प्रदान करने के प्रयास किये जा रहे हैं। इस प्रक्रिया में पाठ्यपुस्तकों, विशेषतः इतिहास की पाठ्यपुस्तकों पर गहरा प्रभाव पड़ा है।

भारत में पाकिस्तान की ही तरह लगभग सभी पाठ्यपुस्तकें केंद्र या राज्य सरकारों द्वारा निर्मित की जाती हैं। यह एक ऐसा तथ्य है जो सरकार और स्कूल की इतिहास की पाठ्यपुस्तकों के बीच एक कड़ी को दर्शाता है। ये प्राथमिक साधन हैं जिनके माध्यम से ये सरकारें क्रमशः भारतीय या पाकिस्तानी इतिहास के अपने विचारों को बढ़ावा देने का प्रयास करती हैं। यह कहा जा सकता है कि दोनों देशों में पाठ्यपुस्तकें स्कूलों में अत्यंत प्रभावशाली हैं और यह काफी हद तक ब्रिटिश प्रणाली की विरासत है। जैसा कि कृष्ण कुमार अपने लेख 'कोलोनियल सिटीजन एज एन एजुकेशनल आइडियल' में लिखते हैं कि औपनिवेशिक शिक्षा का उद्देश्य क्लर्क पैदा करना था, यह सैद्धांतिक रूप से कमजोर और ऐतिहासिक रूप से अस्थिर है। इसकी सैद्धांतिक कमजोरी इस तथ्य में निहित है कि यह हमें एक शैक्षिक प्रणाली में निहित विचारों और इसके व्यावहारिक उद्देश्यों के बीच अंतर करने में मदद नहीं करता है।[13]

सांप्रदायिकता या राष्ट्रवाद का ऐतिहासिक चरित्र अतीत के ऐतिहासिक चरित्र की स्थापना के बाद आना चाहिए। अतीत ऐतिहासिक है न केवल इस अर्थ में कि अतीत इतिहास बनाता है,बल्कि यह इस अर्थ में भी ऐतिहासिक है कि अतीत को याद करके ही इतिहास का निर्माण किया जाता है। इस अर्थ में भारत का आधुनिक इतिहास सबसे पहले औपनिवेशिक काल में और उपनिवेशवादियों द्वारा लिखा गया था। यह उपनिवेशवादी

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

लेखक थे जिन्होंने भारतीय अतीत के पैटर्न को काफी हद तक स्थापित किया, जैसा कि हम आज जानते हैं। उस पैटर्न में 'सांप्रदायिक संघर्ष' को उजागर करना एक महत्त्वपूर्ण मकसद था। उन्नीसवीं सदी के अंत तक उपनिवेशवादी इतिहास–लेखन धार्मिक कट्टरता और विभिन्न धार्मिक धारणाओं के लोगों के बीच संघर्ष को भारतीय समाज की अधिक विशिष्ट विशेषताओं में से एक के रूप में प्रस्तुत कर रहा था। भारतीय इतिहास के इस विशेष पठन को न यूरोपीय अनुभव के संदर्भ में इसकी अवधि से अलग किया गया था और न ही सांप्रदायिक,बल्कि धार्मिक श्रेणियों के उपयोग से भारतीय इतिहास की इन अवधियों को अलग करने के लिए किया गया था (कम से कम, उनमें से पहले दो; हिंदू और मुस्लिम)। साम्प्रदायिक दंगों की कहानी ने इतिहास के इस पठन को प्रमाणित करने का काम किया।[14] इस तरह शिक्षा की विस्तारित प्रणाली में क्या पढ़ाया और सीखा जा सकता है, इस सम्बन्ध में इतिहास की पाठ्यपुस्तकें और परीक्षा नियंत्रण दो महत्त्वपूर्ण उपकरण के रूप में उभरते हैं। स्वतंत्रता के पश्चात् से ही पाठ्यपुस्तकों ने शैक्षिक प्रक्रिया और मानस निर्माण में एक प्रमुख भूमिका निभाई हैं।

औपनिवेशिक बनाम जातीय एवं सांप्रदायिक औपनिवेशिकता

1947 में भारतीय उपमहाद्वीप का हिंदू–बहुसंख्यक भारत और मुस्लिम–बहुल पाकिस्तान के स्वतंत्र राष्ट्रों में विभाजन के परिणामस्वरूप मानव इतिहास में सबसे बड़े सामूहिक प्रवास और एक बड़े पैमाने पर हिंसा हुई, जो शायद ही पहले कभी देखी गई थी। विभाजन के परिणामस्वरूप हजारों लोगों की मृत्यु हुई और लाखों लोगों को निर्वासित होना पड़ा। विभाजन की हिंसक प्रकृति ने भारत और पाकिस्तान के बीच शत्रुता और संदेह का माहौल बनाया जो आज तक उनके संबंधों को प्रभावित करता है। स्वतंत्र राष्ट्र बनने के साथ ही पाकिस्तान ने भारत को एक आक्रामक और शत्रुतापूर्ण पड़ोसी के रूप में देखा है जो उसकी दृष्टि में पूरे उपमहाद्वीप पर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहता है। पाकिस्तान की सुरक्षा समस्याएँ, इतिहास और भूगोल दोनों से उत्पन्न होती हैं और इसके वैचारिक और राजनीतिक दोनों आयाम हैं। ऐतिहासिक समस्या "कश्मीर के अनसुलझे विवाद के रूप में विभाजन के अधूरे कार्य" के साथ निहित है।[15] इसने अपने पड़ोसी से उनके अलगाव को और बढ़ा दिया है। डर और जुनून की इन भावनाओं का सरकार और अन्य आधिकारिक नागरिक निकायों के साथ–

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

साथ सेना द्वारा कई तरह से जानबूझकर भुनाया जाता रहा है। अन्य बातों के अलावा इसने पाकिस्तान के राष्ट्रीय बजट में रक्षा बजट के नाम पर खर्च किये गये जबरदस्त हिस्से को सही ठहराने का काम भी किया है। शिक्षा भी उन महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में से एक है जिसका उपयोग पाकिस्तानी अधिकारियों द्वारा जानबूझकर भारत के इस प्रचलित भय के प्रचार और उपयोग के लिए किया जाता रहा है। यह प्रचार इस्लाम, राष्ट्रवाद और सैन्यवाद से जुड़ी ताकतों के एक जटिल परस्पर क्रिया का उपयोग करता है।[16] पाकिस्तान में इतिहास का सांप्रदायिकरण 1950 और 1960 के दशक में राष्ट्र–निर्माण प्रक्रिया के हिस्से के रूप में शुरू हुआ। प्रमुख पाकिस्तानी इतिहासकार आई. एच. कुरैशी ने 1962 में एक किताब, द मुस्लिम कम्युनिटी ऑफ द इंडियन सब–कॉन्टिनेंट लिखी। इस पुस्तक में उन्होंने तर्क दिया कि यदि मुसलमान अपनी विशिष्टता को भूल जाते हैं और अकबर की तरह आत्मसात हो जाते हैं, तो क्या मुस्लिम राष्ट्र एक अलग राष्ट्र के रूप में अस्तित्व में रह सकता है? अकबर की नीतियों ने न केवल मुस्लिम साम्राज्य के लिए बल्कि उपमहाद्वीप में मुस्लिम राष्ट्र के निरंतर अस्तित्व के लिए भी खतरा पैदा किया था।[17] इसके अलावा अन्य इतिहासकारों में अजीज अहमद (1964) ने अपनी किताबों में आगे बताया कि कैसे इस्लामी संस्कृति और सभ्यता हिंदू संस्कृति और सभ्यता से अलग हैं। इसी तरह हिंदू समुदाय के साथ मतभेदों को समझाते हुए सांप्रदायिक आधार पर पाकिस्तानी राष्ट्रवाद का निर्माण करने का प्रयास किया गया।

पाकिस्तान के वैचारिक सुदृढ़ीकरण के लिए पाठ्यपुस्तकों का उपयोग जनरल अयूब खान के शासन में शुरू हुआ, जिन्होंने 1959 में एक शिक्षा नीति लागू की। इसमें आठवीं कक्षा तक इस्लामियत (इस्लामिक स्टडीज) का अनिवार्य अध्ययन लागू किया गया था। इसी अवधि के दौरान, एक अलग विषय के रूप में इतिहास के अध्ययन को स्कूल प्रणाली से समाप्त कर दिया गया था। इतिहास को 'सामाजिक अध्ययन' नामक एक नए विषय में शामिल किया जाना था, जिसमें भूगोल और नागरिक शास्त्र भी शामिल थे। स्नातक स्तर पर इसे 'पाकिस्तान स्टडीज' नामक एक अन्य विषय में मिला दिया गया था। जुल्फिकार अली भुट्टो ने और कदम उठाए, क्योंकि वह अपने देश को मुस्लिम दुनिया के साथ जोड़ने के लिए बहुत उत्सुक थे। 1971 में अपने 'ईस्ट विंग' के विभाजन से पाकिस्तानी परिदृश्य

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

की वह विशेषता जो विशाल मोजेक में इस्लाम की छवि को अंतिम एकता के आधार और ताकत के रूप में इस्तेमाल किया जाता था; टुकड़े–टुकड़े हो गया था। ऐसे में भुट्टो ने पाकिस्तान की इस्लामी पहचान को फिर से स्थापित करने के लिए मुस्लिम देशों का समर्थन मांगा, जिसको एक स्वतंत्र बांग्लादेश की स्थापना द्वारा कटघरे में लाकर खड़ा कर दिया गया था। यह नीति 1974 में चरमोत्कर्ष पर जा पहुँची जब पाकिस्तान में इस्लामिक सम्मेलन के संगठन का शिखर सम्मेलन हुआ। भुट्टो ने 1972 की शुरुआत में एक नई शिक्षा नीति लागू की, जिसने दसवीं कक्षा तक इस्लामियत को अनिवार्य बना दिया और बाद के वर्षों में इसके महत्त्व को बढ़ाने का मार्ग प्रशस्त किया।

हालाँकि, 1979 के बाद पाकिस्तान में इतिहास का सांप्रदायिकरण और अधिक स्पष्ट हो गया। इस्लामीकरण की प्रक्रिया पाकिस्तान में जनरल जिया–उल–हक द्वारा शुरू की गई थी, जिन्होंने पाकिस्तान में और जीवन के हर क्षेत्र में इस्लाम को अपनाने और लागू करने पर लगातार ध्यान केंद्रित किया था। जिया और उनके साथियों ने सबसे पहले यह तय किया कि पाकिस्तान के विभाजित देश में इस्लाम एकजुटता का मुख्य कारक है।[18] जनरल जिया–उल–हक ने इस्लामीकरण की अपनी परियोजना को बढ़ावा देने के लिए पाकिस्तान स्टडीज और इस्लामियत को अनिवार्य विषयों के रूप में लागू किया। अमीना मुहम्मद–आरिफ का मत है कि, "पाकिस्तानी शिक्षा प्रणाली का सांप्रदायिकरण पाठ्यपुस्तकों में धर्म के कब्जे वाले स्थान और भारत, साथ ही हिंदुओं को चित्रित करने के तरीके, दोनों में प्रचलित है"।[19] 1979 की शिक्षा नीति में कहा गया–

इस्लामी विचारों के इर्द–गिर्द संपूर्ण सामग्री को फिर से व्यवस्थित करने और शिक्षा को एक वैचारिक अभिविन्यास देने की दृष्टि से पाठ्यक्रम के संशोधन को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाएगी। ताकि इस्लामी विचारधारा युवा पीढ़ी की सोच में प्रवेश कर सके और इस्लामी सिद्धांतों के अनुसार समाज को नया रूप देने के लिए आवश्यक दृढ़ विश्वास और क्षमता के साथ उनकी मदद कर सके।[20]

इस तरह शिक्षा व्यवस्था के सभी स्तरों पर इस्लामियत को अनिवार्य विषय के रूप में लागू किया गया। शिक्षा के इस्लामीकरण ने शिक्षकों को भी प्रभावित किया, जिन्हें अब केवल अपने विषय के ज्ञान और

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पढ़ाने की क्षमता के आधार पर नियुक्त नहीं किया जाता था, बल्कि कुरान और सुन्नत को भी जानना उनके लिए उतना ही आवश्यक था। धार्मिक विद्वानों की एक समिति द्वारा पाठ्यपुस्तकों की भी अच्छी तरह से छानबीन की गई थी और यह समिति इस्लाम के अपने विचारों के साथ विरोधाभासी किसी भी सामग्री को हटाने की शक्तियों से संपन्न थी। शिक्षा के इस्लामीकरण के प्रभाव को पाकिस्तान की मौजूदा शिक्षा प्रणाली के पाठ्यक्रम और देश में छात्रों को दी जा रही शिक्षा की प्रकृति में प्रकट रूप से देखा जा सकता है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि पाकिस्तान में इस्लाम के नाम पर ज्ञान उत्पादन में जो बदलाव लाये जा रहे थे वह पाकिस्तानी युवा पीढ़ी को अखिल इस्लामिक एकजुटता के साथ ही नहीं जोड़ती थी बल्कि उन्हें इस्लामिक जगत् का नेतृत्व प्राप्त करने की प्रेरणा भी दे रही थी। उधर इस्लाम की ही एक धारा लश्कर–ए–तइबा, हिजबुल–मुजाहिद्दीन, अलकायदा, सिमी, आई एस आई आदि में भी इस्लाम के एक प्रारूप को आधार बनाकर दो तरफा हिंसक लड़ाई भी चल रही थी। जिसका एक पक्ष यूरोपीय एवं अमेरिकी वर्चस्व का विरोध था और दूसरा अपने ही समुदाय का एकरुपीय संगठन भी था जिसे अपने ही लोगों पर हिंसा करने में भी गुरेज नहीं था। इस तरह पाकिस्तान का इस्लामी कलेवर और इस्लाम के उस दूसरे कलेवर जिसमें वह आतंकवाद का हथियार था, उससे वैचारिक दूरी दिखाने और अन्तरंग सहयोगी बनने के दुश्चक्र में फंस गया। आज पाकिस्तान के वि–औपनिवेशीकरण प्रोजेक्ट में यह दुश्चक्र उसे बद से बदतर हालात में ले जाने के लिए जिम्मेदार नहीं हैं – यह कहना कितना कठिन है।

इन सबका प्रभाव पाकिस्तान की पाठ्यपुस्तकों में भारत की छवि के विश्लेषण में भी देखा जा सकता है, जिसमें भारत में जातीय हिंसा ने इतना महत्त्व पा लिया है कि प्रमुख जातीय समूहों, विशेष रूप से हिंदुओं और मुसलमानों के बीच तनाव को परिभाषित करने के लिए एक विशिष्ट शब्द भी गढ़ा गया। वह है सांप्रदायिकता।[21] उपमहाद्वीप में 'सांप्रदायिक' शब्द विशेष रूप से धार्मिक समुदायों, (हिंदू और मुस्लिम) के विरोध के संघर्षों को संदर्भित करने के लिए उपयोग किया जाता है। पाकिस्तानी संदर्भ में यह भारत के लिए आम तौर पर नकारात्मक संदर्भों में अनुवाद करता है जिसमें हिंदू संस्कृति और धर्म को आमतौर पर अशुद्ध और निम्न के

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

रूप में वर्णित किया जाता है। पाकिस्तानी पाठ्यपुस्तकों के लेखकों द्वारा हिन्दू धर्म में विद्यमान जाति व्यवस्था को विशेषरूप से लक्ष्य बनाया जाता रहा है। 1987 में कक्षा पांच की पाठ्यपुस्तक में लिखा गया कि "हिंदुओं ने सिंधु घाटी की प्राचीन आबादी के साथ बहुत बुरा व्यवहार किया। उन्होंने जबरन उनकी जमीन पर कब्जा कर लिया। उन्होंने उनके घरों में आग लगा दी और उन्हें मार डाला। जो बच गए उन्हें गुलाम बनने के लिए मजबूर किया गया। उपमहाद्वीप के प्राचीन लोगों को हराने के बाद हिंदू आपस में लड़ने लगे। वे जातियों में बंट गए। वे दूसरों के साथ विवाह नहीं करते थे या उनके साथ भोजन नहीं करते थे। हिंदू किसी एक भगवान् में विश्वास नहीं करते थे बल्कि अपने मंदिरों में कई मूर्तियों की पूजा करते थे।"[22]

पाकिस्तान में शिक्षा के 'साम्प्रदायीकरण' का केंद्र धर्माधारित दो–राष्ट्र सिद्धांत रहा है, जिसे भुट्टो और जिया के शासनकाल के दौरान बहुत आवश्यक तरीके से व्यक्त किया गया था। संपूर्ण पाठ्यक्रम और सामाजिक अध्ययन के वैचारिक सिद्धांत इसी द्वि–राष्ट्र सिद्धांत के इर्द–गिर्द केंद्रित हैं[23]। जैसा कि कक्षा चार के लिए 1975 में निर्मित सामाजिक अध्ययन के लिए शिक्षक गाइड द्वारा दी गई निम्नलिखित सिफारिशों से सिद्ध होता है।

बच्चों को पंजाब का इतिहास इस तरह से पढ़ाएं कि निम्नलिखित तथ्य बिल्कुल स्पष्ट हो जाएं–

1. हिंदुओं और मुसलमानों के जीवन के तरीके, रीति–रिवाजों और परंपराओं, विश्वासों और संस्कृति के बीच पूर्ण अंतर।

2. उन पहलुओं पर विशेष जोर दें जिन्होंने मुसलमानों को अपने लिए एक अलग देश बनाने के लिए मजबूर किया; यहाँ विशेष रूप से हिंदुओं के क्षेत्रों में मुसलमानों के आर्थिक, शैक्षिक और सामाजिक शोषण पर जोर दिया गया है; मुसलमानों की तुलना में हिंदुओं के प्रति अंग्रेजों का अनुकूल और मैत्रीपूर्ण रवैया, मुसलमानों के प्रति हिंदुओं का असमान और भेदभावपूर्ण रवैया।[24]

इस तरह से अधिकांश पाकिस्तानी पाठ्यपुस्तकों के लेखकों द्वारा एक निरंतर चलने वाले संघर्ष वैचारिक संघर्ष जन्म दिया गया जो अन्ततः हिन्दू और मुस्लिम के मध्य द्वि–राष्ट्र के सिद्धांत को लेकर चलने वाला संघर्ष बन गया। सतत विकास नीति संस्थान के अनुसार, 1970 के दशक से

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पाकिस्तान की स्कूली पाठ्यपुस्तकों ने ऐतिहासिक संशोधनवाद के माध्यम से व्यवस्थित रूप में भारत और हिंदुओं के प्रति घृणा पैदा की है। इस्लामी विजय और हिंदुओं के धर्मांतरण का कोई उल्लेख नहीं है। कई ग्रंथ यह धारणा देते हैं कि प्राचीन भारतीय विरासत को अफगानों और तुर्कों ने नष्ट नहीं किया था, लेकिन मुस्लिम विरासत को भारतीयों ने नष्ट कर दिया था, जो कि मुख्यधारा के इतिहासकारों के सिद्धांत के विपरीत माना जाता है। मिडिल ईस्ट स्टडीज के अंतर्राष्ट्रीय जर्नल में प्रकाशित 1995 के एक लेख में इतिहासकार आयशा जलाल ने कहा कि "पाकिस्तान के इतिहास की पाठ्यपुस्तकें एक राष्ट्रीय अतीत की रचनात्मक कल्पनाओं में शक्ति और कट्टरता के बीच गठजोड़ का आकलन करने के लिए सर्वोत्तम उपलब्ध स्रोतों में से हैं।"[25]

पाकिस्तान स्टडीज की एक टेक्स्ट बुक का दावा है कि पाकिस्तान पहली बार तब स्थापित हुआ जब मोहम्मद बिन कासिम के अधीन अरबों ने सिंध और मुल्तान पर कब्जा कर लिया; तेरहवीं शताब्दी तक पाकिस्तान पूरे उत्तरी भारत और बंगाल को शामिल करने के लिए फैल गया था और फिर खिलजी के समय में पाकिस्तान मध्य भारत और दक्कन के एक बड़े हिस्से को शामिल करने के लिए दक्षिण की ओर आगे बढ़ा। औरंगजेब के शासनकाल के दौरान पाकिस्तान की भावना मजबूत हुई किन्तु, उसकी मृत्यु ने 'पाकिस्तान की भावना को कमजोर कर दिया'। जलाल बताते हैं कि जमील जलिबी जैसा एक प्रशंसित विद्वान् भी एक राष्ट्रीय इतिहास की वैधता पर सवाल उठाता है जो भारत की ऐतिहासिक पुरातनता के साथ प्रतिस्पर्धा करने के प्रयास में "पाकिस्तान के पूर्व–इस्लामिक अतीत का दावा" करना चाहता है। स्नातक के छात्रों के लिए डिजाइन किया गया अली का दो खंडों में लिखा गया इतिहास 'भारत–पाकिस्तान' उपमहाद्वीप के पूर्व– इतिहास को पुरापाषाण युग से जोड़ता है और द्रविड़ों और आर्यों पर चर्चा करते हुए लगातार 1947 के बाद की पाकिस्तान की सीमाओं को संदर्भित करता है।[26] जैसा कि रुबीना सैगोल ने रेखांकित किया है, पाकिस्तानी पाठ्यपुस्तकों की एक प्रमुख विशेषता यह है कि घटनाओं को प्राकृतिक या शाश्वत के रूप में संशोधित करके इतिहास की भावना को समाप्त कर दिया गया है। कारण कोई भी हो, सामाजिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक, आर्थिक या वैचारिक कारकों के बजाय व्यक्तियों या समूह के

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

व्यक्तित्व गुणों को जिम्मेदार ठहराया जाता है। इस प्रकार अक्सर ऐसे बयान मिलते हैं जैसे 'मुस्लिम महिलाओं और बच्चों को मार डाला गया और हत्या कर दी गई, क्योंकि हिंदू क्रूर और हृदयहीन हैं', या 'मुसलमानों द्वारा सिंध की विजय इसलिए हुई क्योंकि मुसलमान बहादुर और मजबूत हैं'।[27]

पाकिस्तान में सैन्य तानाशाही और भारत एक नागरिक सरकार के साथ एक धर्मनिरपेक्ष राज्य होने के कारण, पाकिस्तान में हिंदू–विरोधी पूर्वाग्रहों के साथ–साथ भारत–विरोधी भावनाएँ मौजूद हैं।टफ्ट्स विश्वविद्यालय के प्रोफेसर सैय्यद वली रजा नस्र के अनुसार, सैय्यद अबुल अला मौदुदी के अधीन उग्रवादी संगठन जमात–ए–इस्लामी के प्रभुत्व के साथ पाकिस्तान में इंडोफोबिया बढ़ गया। इंडोफोबिया, हिंदू विरोधी और नस्लवादी विचारधाराओं के साथ जैसे कि मार्शल रेस सिद्धांत, भारतीय उपमहाद्वीप के पक्षपाती और संशोधनवादी इतिहास लेखन को बढ़ावा देने के लिए पाकिस्तान में स्कूली पाठ्यपुस्तकों के पुनर्लेखन के पीछे प्रेरक कारक थे, जिन्होंने इंडोफोबिक और हिंदू विरोधी पूर्वाग्रहों को प्रख्यापित किया। इन आख्यानों को पाकिस्तान के इतिहास के व्यापक संशोधन में इस्लामी प्रचार के साथ जोड़ा गया है। जिहाद, गैर–मुसलमानों की हीनता, पाकिस्तान के साथ भारत की कथित दुश्मनी, आदि जैसी अवधारणाओं का प्रचार करके सभी सरकारी स्कूलों द्वारा उपयोग की जाने वाली पाठ्यपुस्तक बोर्ड प्रकाशन एक प्रगति विरोधी मानसिकता को बढ़ावा देते हैं।[28] जिया की अवधि के दौरान स्वदेशीकरण और इस्लामीकरण की नीति ने न केवल यह सुनिश्चित किया कि इस्लामी इतिहास और मुस्लिम पात्रों को उचित कवरेज और ध्यान दिया जाएगा, बल्कि इस बात का भी ध्यान रखा गया कि गैर–मुस्लिम पात्रों का उल्लेख नहीं किया जाएगा। इस्लाम के कट्टरवादी रुख से स्कूलों को अब जिस पैमाने से प्रभावित किया जा रहा है, वह भयावह है, क्योंकि यह कट्टरता और जेनोफोबिया को बढ़ावा देता है। 1970 के दशक के बाद से धर्म ने पूरी शिक्षा प्रणाली में प्रवेश किया है और बहुलवाद और धर्मनिरपेक्षता के लिए कम सहिष्णुता के साथ धर्म पर लगातार ध्यान केंद्रित किया गया है। दरअसल, पाकिस्तान में समकालीन शैक्षिक दस्तावेज युवाओं के इस्लामी प्रशिक्षण पर केंद्रित हैं।[29]

जिया के और यहाँ तक कि जुल्फिकर अली भुट्टो के शासन के अंतर्गत अन्य धर्मों (जैसे–ईसाई) के भविष्य वक्ताओं का उल्लेख मुस्लिम

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

धार्मिक और राष्ट्रवादी पात्रों द्वारा मिटा दिया गया। इस्लाम के पहले चार खलीफा के साथ उपमहाद्वीप के इतिहास में दो प्रमुख विजेता मुहम्मद बिन कासिम और गजनी के महमूद ने इन गैर–मुस्लिम पैगंबर की जगह ले ली, जबकि जिन्ना और इकबाल ने राम और बुद्ध का स्थान ले लिया। दरअसल जब तक राज्य ने अपनी विचारधारा को मुखर करने के लिए इस्लामीकरण को एक प्रमुख उपकरण के रूप में इस्तेमाल नहीं किया था, तब तक कुछ गैर–मुस्लिम ऐतिहासिक और पौराणिक शख्सियतों को सकारात्मक प्रकाश में चित्रित किया गया था। उदाहरण के लिए जिया के शासनकाल से पहले राम और बुद्ध को दयालु,न्यायप्रिय, देखभाल करने वाला, सहानुभूतिपूर्ण, अहिंसक और दया और प्रेम से भरा बताया गया था।[30] कुछ हिंदू राजाओं और राज्यों जैसे राजा दाहिर को छोड़कर पाकिस्तानी पाठ्यपुस्तकों में जगह बनाने में शायद ही सफल रहे हैं, जिन्होंने 712 ईस्वी में सिंध में मुहम्मद बिन कासिम द्वारा पराजित होने से पहले कई अरब आक्रमणों का सफलतापूर्वक विरोध किया था। हालाँकि राजा दाहिर के द्वारा एक दर्जन से अधिक अरब आक्रमण के प्रयासों को सफलतापूर्वक खदेड़ दिये जाने का उल्लेख नहीं है, केवल उसकी हार का उल्लेख मिलता है। राजा दाहिर और किसी भी अन्य हिंदू शासक जो अतीत की पाकिस्तानी कहानी में शामिल है उसको असंगठित कायरों के रूप में चित्रित किया गया है, जो असहाय लोगों पर शासन करते हैं तथा जाति द्वारा निराशाजनक रूप से विभाजित हैं। पाकिस्तानी पाठ्यपुस्तकें छात्रों को यह भी गर्व से बताती हैं कि मोहम्मद बिन कासिम की सेना ने कई शहरों को धराशायी कर दिया और सभी निवासियों का नरसंहार किया। पाकिस्तानी पाठ्यपुस्तकों में कभी भी यह उल्लेख नहीं किया गया है कि दशकों तक, गुजरात और राजस्थान में अरब आक्रमणों को प्रतिहारों जैसे समूहों द्वारा सफलतापूर्वक खदेड़ दिया गया था। पाकिस्तानी पाठ्यपुस्तकों में इस उग्र और प्रभावी प्रतिरोध का उल्लेख नहीं है, यह आश्चर्य की बात नहीं है, लेकिन इन ऐतिहासिक घटनाओं को भारतीय छात्रों के लिए लिखी गई पुरानी एनसीईआरटी पाठ्यपुस्तकों से बाहर रखा गया है, यह आश्चर्यजनक है।[31] जिया उल हक के शासनकाल (1983) के दौरान निर्मित सातवीं कक्षा की एक पाठ्यपुस्तक में पूर्व–इस्लामिक समाज का एक विशिष्ट विवरण इस प्रकार है :

इस्लाम के आगमन से पहले दुनिया के लोग बुरी स्थिति में थे।

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

शासक स्थायी रूप से आनंददायक कार्यों में लगे हुए थे। हर जगह अंधविश्वास और अज्ञानता थी। देवी–देवताओं की पूजा की जाती थी।[32]

दरअसल घरेलू और विदेश नीति दोनों में राष्ट्रीय पहचान की समस्या से पाकिस्तान के नेता चिंतित थे। 1973 में इस्लामाबाद में आयोजित पाकिस्तान के इतिहास और संस्कृति की पहली कांग्रेस की कार्यवाही के लिए एक परिचयात्मक नोट में संपादक ने कुछ इस प्रकार टिप्पणी की थी कि –

हमारी राष्ट्रीय पहचान के प्रश्न पर विचार करके पाकिस्तानी बुद्धिजीवियों का मन अक्सर आंदोलित होता रहा है.... वे कौन सी कड़ियाँ हैं जो पाकिस्तान के लोगों को बांधती हैं? पाकिस्तान की आत्मा और व्यक्तित्व क्या है? हमारी राष्ट्रीय पहचान और हमारी अजीबोगरीब एकता क्या है जो हमें अन्य राष्ट्रों से अलग एक राष्ट्र बनाती है?[33]

जुल्फिकार अली भुट्टो के प्रशासन ने इस्लामी प्रतिष्ठान को कई रियायतें दीं, जिनमें पाकिस्तान के इतिहास में पहली बार केंद्रीय कैबिनेट में धार्मिक मामलों के मंत्री को शामिल करने का निर्णय शामिल था।[34] भुट्टो द्वारा शुरू की गई नीति के अनुसार, मध्य पूर्व की ओर पाकिस्तान को 'पुनरोन्मुख' करने की नीति को ध्यान में रखते हुए मुस्लिम दुनिया के साथ पहचान हासिल करने के लिए भूगोल को भी नया रूप दिया गया था। इसको समझने के लिए हमें सातवीं कक्षा की भूगोल की पाठ्यपुस्तक के शीर्षक देखने चाहिए जो कुछ इस प्रकार थे– 'माउंटेन्स ऑफ द मुस्लिम वर्ल्ड', 'द रिसोर्सेज ऑफ द मुस्लिम वर्ल्ड', 'द सीज ऑफ मुस्लिम वर्ल्ड' इत्यादि। उनका उद्देश्य बच्चों के दिमाग में यह विचार डालना है कि वे एक अत्यधिक अंतर्राष्ट्रीय मुस्लिम दुनिया से ताल्लुक रखते हैं, हालांकि यह धारणा वास्तव में काल्पनिक है, क्योंकि ऐसी कोई इकाई नहीं है।[35] इसके अलावा वास्तुशिल्प के माध्यम से भी साम्प्रदायिकरण किया जाता रहा है। इसको इस प्रकार समझा जा सकता है कि कक्षा पाँच के लिए 1988 में निर्मित सामाजिक अध्ययन की पाठ्यपुस्तक में कहा गया कि मुसलमान और हिंदू अपने रहन–सहन, खान–पान और पहनावे में पूरी तरह से अलग हैं। हम खुले, विशाल, स्वच्छ जगह पर अच्छी तरह से मस्जिदों में नमाज अदा करते हैं। हिंदू अपने मंदिरों के अंदर, संकीर्ण, संलग्न और अंधेरे में पूजा करते हैं।[36]

पाकिस्तान में सेना ने हमेशा मौका मिलने पर सत्ता हथियाने की राजनीति में एक प्रमुख भूमिका निभाई है और ऐसी स्थिति में उसे वैधता की

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

बहुत आवश्यकता होती है। यह 1971 के बाद विशेष रूप से समझा जा सकता है; क्योंकि देश न केवल विभाजित हुआ बल्कि भारत के खिलाफ युद्ध भी हार गया था और भारत का हस्तक्षेप बंगालियों को पश्चिम पाकिस्तान से अपनी स्वतंत्रता प्राप्त करने में मदद करने में निर्णायक साबित हुआ था। इस्लामीकरण वास्तव में, सेना द्वारा वैधता हासिल करने के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले प्रमुख उपकरणों में से एक था और यह आश्वस्त करता था कि पाकिस्तान की एकता सुनिश्चित करने और नागरिकों को राष्ट्रवादी बनाने में केवल इस्लाम ही बाध्यकारी बल हो सकता है जो देश के राष्ट्रीय ताने–बाने को और कमजोर न करने के लिए आवश्यक है। इस्लामीकरण के अनुरूप पाकिस्तानी नागरिकों में यह विचार पैदा करने का प्रयास था कि भारत शाश्वत शत्रु है। पाठ्यपुस्तकों ने सेना के निरंतर महिमामंडन और युद्धों के बार–बार संदर्भों, युद्धपोतों, लड़ाकू विमानों आदि की प्रचुर छवियों के साथ सेना के महत्त्व को भी दर्शाया। विशेष रूप से भारत के खिलाफ 1965 के युद्ध के कई संदर्भ दिलचस्प हैं, क्योंकि इस संघर्ष का कोई स्पष्ट विजेता नहीं था। क्योंकि पाकिस्तान ने युद्ध में पहल की और भारतीय वायु सेना पर गंभीर हमले किए, इस संघर्ष को पाठ्यपुस्तकों में पाकिस्तान की जीत के रूप में प्रस्तुत किया गया। लेकिन वास्तव में भारतीय सेना को पराजित नहीं किया गया था, क्योंकि उन्होंने अंतर्राष्ट्रीय सीमा पार कर लाहौर की ओर बढ़ना शुरू कर दिया था, जब संयुक्त राष्ट्र ने 'महान शक्तियों' के दबाव में युद्धविराम की घोषणा की थी।[37]

कक्षा नौ और दस के लिए पाकिस्तान स्टडीज की पाठ्यपुस्तक 1971 के युद्ध पर अपने खंड में मरहूम जुल्फिकार अली भुट्टो या पाकिस्तान पीपुल्स पार्टी की भूमिका का उल्लेख करने में विफल है और पूर्वी पाकिस्तान के पतन के कारणों में हिंदू शिक्षकों और अंतर्राष्ट्रीय षड्यंत्रों की भूमिका को सूचीबद्ध करता है। पाठ्यपुस्तक में कहा गया है कि "पूर्वी पाकिस्तान के शिक्षण संस्थानों में बड़ी संख्या में हिंदू शिक्षक पढ़ा रहे थे। उन्होंने ऐसे साहित्य का निर्माण किया जिसने पश्चिमी पाकिस्तान के लोगों के खिलाफ बंगालियों के मन में नकारात्मक सोच पैदा की।"[38] पाकिस्तानी इतिहासकारों और शिक्षाविदों ने "राज्य के पाठ्यक्रम के वाइटवाशिंग होने की लंबे समय से निंदा की है" और यह भयावह है कि सरकार अभी भी पाकिस्तान की भावी पीढ़ी को पढ़ाए जा रहे पाठ्यक्रम में बदलाव नहीं कर

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

रही है। 1980 के दशक के अंत में जिया युग समाप्त हो गया, लेकिन तब से पाठ्यक्रम में कोई सकारात्मक संशोधन नहीं हुआ है, यहाँ तक कि लोकतांत्रिक शासन के सत्ता में आने के बाद भी नहीं। विशेष रूप से भारत के प्रति नकारात्मक संदर्भ अपरिवर्तित ही रहे हैं। धर्माधारित द्वि–राष्ट्र सिद्धांत और भारत का शाश्वत शत्रु के रूप में चित्रण अभी भी पाकिस्तान के सामाजिक अध्ययन पाठ्यक्रम का सार है।[39] इन तथ्यों से यह स्पष्ट है कि लगभग शुरुआत से लेकर आज तक पाकिस्तानी सरकार ने पाठ्यपुस्तकों को शिक्षा के साधन के बजाय एक आधिकारिक प्रचार तंत्र के रूप में देखा है जिसका अंतिम उद्देश्य पाकिस्तानी राष्ट्रवाद का सुदृढ़ीकरण और एक पाकिस्तानी पहचान और तदनुरूप नागरिकता का निर्माण था।[40]

जबकि, वास्तव में, स्कूल का उद्देश्य एक इस्लामी वैचारिक अभिविन्यास केंद्र बनना नहीं है बल्कि इसे एक ऐसा स्थान होना चाहिए जहाँ शिक्षा दी जाती है, एक युवा दिमाग तैयार किया जाता है और जिसका अर्थ केवल तथ्यों को सीखना नहीं है बल्कि दिमाग को तर्कसंगत और आलोचनात्मक सोचने के लिए प्रशिक्षण देना है। दूसरे शब्दों में छात्रों का इस प्रकार पोषण करना और उनका मार्गदर्शन करना ताकि छात्र तर्कसंगत और आलोचनात्मक रूप से सोचने में सक्षम हों। अफसोस की बात है कि पाकिस्तान में मौजूदा शिक्षा प्रणाली न तो छात्रों को तर्कसंगत सोच और न ही तार्किक विश्लेषण के लिए तैयार करती है, बल्कि यह एक ऐसी कथा का प्रचार कर रही है जो पूरी तरह से संकीर्णतावादी इस्लामी है और इसका छात्र की विचार प्रक्रिया पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इस्लामिक स्टडीज, जो एक अलग विषय के रूप में स्कूल में प्रत्येक मुस्लिम छात्र के लिए एक अनिवार्य विषय है, के अलावा भी वे जिन पाठ्यपुस्तकों का उपयोग करते हैं, वे इस्लामी शिक्षाओं और विचारों से भरी हुयीं हैं। ऐसी शिक्षा प्रणाली सामाजिक परिवर्तन को बढ़ावा नहीं देती है।[41] और अगर किसी को अतीत को देखना पड़े तो यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पाकिस्तान एक इस्लामिक राज्य है जहाँ इस्लाम के अन्य संप्रदायों के लिए कोई भी सहिष्णुता नहीं है। व्यावहारिक रूप से यह एक विफल राज्य है, एक असफल लोकतंत्र और शायद जिसकी पाकिस्तान के संस्थापक नेताओं ने कभी कल्पना भी नहीं की थी। एक ऐसा असफल राष्ट्र जिसके एक भी प्रधानमंत्री ने आजादी के 75 वर्षों में अपना कार्यकाल पूरा नहीं कर पाया है।

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

भारत, हिंदुत्व और ज्ञान का वि–औपनिवेशीकरण

आधुनिक राष्ट्र आमतौर पर अपने स्कूलों में इतिहास के शिक्षण को बहुत महत्त्व देते हैं, क्योंकि इस तरह के निर्देश अक्सर सरकार के अपने राजनीतिक रूपों में निहित आदर्शों और मूल्यों को बनाए रखने और प्रसारित करने के साधन के रूप में कार्य करते हैं। सरकार की कार्रवाई को सही ठहराने और उसके वर्तमान आचरण को मंजूरी देने के लिए इतिहास को भी अक्सर नियोजित किया जाता है। अधिकांश मीडिया का ध्यान और यहाँ तक कि विद्वानों की आलोचना को भारत और पाकिस्तान में हाल ही में निर्मित पाठ्यपुस्तकों की ओर निर्देशित किया गया है। भारतीय जनता पार्टी (बीजेपी) के नेतृत्व वाली हिंदू राष्ट्रवादी सरकार के तहत और जिया–उल–हक के इस्लामीकरण अभियान के तहत पाकिस्तान में उत्पादित पाठ्यपुस्तकें लोकप्रिय विद्वानों और सिविल सोसाइटी के विरोध का विशेष केंद्र रही हैं। यह भी आश्चर्य की बात नहीं है कि भारतीय इतिहास का प्रतिनिधित्व करने वाली पाठ्यपुस्तकें एक उभरते हुए भारतीय राष्ट्रवाद और औपनिवेशिक राज्य के बीच संघर्ष का एक विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण स्थल बन गई हैं।[42] आधिकारिक पाठ्यपुस्तकों में भारतीय इतिहास या धर्म की गलत व्याख्या की आलोचनाएँ अक्सर औपनिवेशिक भारत के उभरते सार्वजनिक क्षेत्र के विवाद से शुरू होती हैं और इस्लामोफोबिया से बल प्राप्त करते हुए भारतीय अतीत की एक ऐसी व्याख्या करती है जो स्वयं में ही औपनिवेशिक मानसिकता की उपज बन जाती हैं।[43]

भारत में आधिकारिक विमर्श ने लंबे समय से धर्मनिरपेक्षता को बढ़ावा देने का समर्थन किया है, जो भारतीय संविधान में अंकित सिद्धांतों में से एक है। यह धर्मनिरपेक्ष नीति पाठ्यपुस्तकों में परिलक्षित होती है। 1950 के दशक में ही कांग्रेस पार्टी के नेतृत्व वाली भारत सरकार शिक्षा व्यवस्था पर धार्मिक विचारों के प्रभाव से चिंतित थी। ये विचार आंशिक रूप से उन्नीसवीं सदी के औपनिवेशिक इतिहास लेखन की विरासत थे, जिसने भारत के अतीत को विभिन्न 'धार्मिक' कालखंडों के बीच विभाजित किया और विभिन्न समुदायों के बारे में रूढ़िवादिता पैदा की। स्कूली शिक्षा में नीतियों के निर्माण और कार्यान्वयन में शिक्षा मंत्रालय को सलाह देने और सहायता करने के लिए 1961 में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (एनसीईआरटी) बनाई गई थी। इस निकाय ने भारतीय इतिहास के

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

शिक्षण में सांप्रदायिक विकृतियों का मुकाबला करने वाली स्कूली पाठ्यपुस्तकों की पहली शृंखला जारी की।[4]

भारत के संघात्मक स्वरुप के अंतर्गत शिक्षा को भारतीय संविधान की समवर्ती सूची में रखा गया है और जैसा कि समवर्ती सूची में वर्णित विषयों पर निर्णय लेने का अधिकार केंद्र एवं राज्य दोनों को है।[5] 1986 तक देश के लिए शिक्षा की एक समान राष्ट्रीय नीति के अभाव में संघीय राज्यों को अपने पाठ्यक्रम, पाठ्यक्रम की योजना बनाने और पाठ्यपुस्तकें तैयार करने की स्वतंत्रता थी। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (एनसीईआरटी) को भारत सरकार द्वारा स्कूली शिक्षा के क्षेत्र में एक शीर्ष संस्थान के रूप में बनाया गया था, जिसे स्कूलों के सभी चरणों के लिए राष्ट्रीय पाठ्यक्रम तैयार करने और मॉडल पाठ्यपुस्तकें तैयार करने का काम सौंपा गया था। संघीय राज्य एनसीईआरटी द्वारा प्रस्तावित राष्ट्रीय पाठ्यचर्या को अपना सकते हैं, अनुकूलित कर सकते हैं या आंशिक रूप से उसका पालन कर सकते हैं, हालांकि वे ऐसा करने के लिए बाध्य नहीं हैं।

भारत सरकार द्वारा एक स्वायत्त निकाय के रूप में स्थापित राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, पूरे स्कूल स्तर के लिए भाषा, सामाजिक विज्ञान, प्राकृतिक विज्ञान और गणित में स्कूली पाठ्यक्रम और मॉडल पाठ्य–पुस्तकें तैयार कर रही थी, जब 31 दिसंबर 1968 को केंद्रीय शिक्षा मंत्री की अध्यक्षता में नेशनल बोर्ड ऑफ स्कूल टेक्स्ट–बुक्स की स्थापना की गई थी। यह जून 1968 में श्रीनगर में आयोजित राष्ट्रीय एकता परिषद् की बैठक में व्यापक चर्चा के परिणामस्वरूप अस्तित्व में आया। भारत सरकार के प्रस्तावों में कहा गया है कि राष्ट्रीय एकता परिषद् की बैठक ने राष्ट्रीय एकता के उद्देश्यों के लिए पाठ्यपुस्तकों के उचित उपयोग को बहुत महत्त्व दिया। इसने आगे कहा कि बैठक का विचार था कि प्राथमिक से स्नातकोत्तर स्तर तक की शिक्षा को पुनरोन्मुख किया जाना चाहिए और जिसका उद्देश्य होना चाहिए,पहला, भारतीयता, एकता और एकजुटता की भावना पैदा करने के उद्देश्य की पूर्ति और दूसरा, भारतीय लोकतंत्र के मूल सिद्धांतों में विश्वास पैदा करना और तीसरा, एक आधुनिक समाज बनाने में राष्ट्र की मदद करना। इसी उद्देश्य के अनुसरण में एनसीईआरटी द्वारा सत्तर के दशक में इतिहास की पाठ्यपुस्तकों का पहला

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

सेट तैयार किया गया था। इन एनसीईआरटी पाठ्यपुस्तकों को राज्य शिक्षा बोर्डों द्वारा मामूली संशोधनों के साथ अपनाया गया था। कांग्रेस–सीपीआई गठबंधन ने इन पाठ्यपुस्तकों के लेखन को राजनीतिक आधार प्रदान किया और देश के कुछ श्रेष्ठ इतिहासकारों ने इन पुस्तकों को लिखा।[46]

राष्ट्रीय स्तर पर केंद्र सरकार के तत्त्वाधान में एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा पाठ्यपुस्तकों का निर्माण किया जाता है तथा क्षेत्रीय अर्थात् राज्य स्तर पर राज्य द्वारा गठित एजेंसी के माध्यम से पाठ्यपुस्तकों का निर्माण किया जाता रहा है। एडवर्ड वेर्नोफ्फ लिखते हैं कि 'भारतीय व्यवस्था भारत की ऐतिहासिक विरासत के बारे में अधिकतम संघर्ष की अनुमति देती है। शिक्षा के विनियोजन में भी प्रत्येक राज्य और केंद्र सरकार को भारतीय छात्रों के साथ इतिहास के अपने दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने की अनुमति मिल जाती है।'[47] एडवर्ड वेर्नोफ्फ द्वारा एक ओर केंद्र सरकार द्वारा निर्मित विभिन्न इतिहास की पाठ्यपुस्तकों के बीच तुलना की गई साथ ही दूसरी ओर विभिन्न राज्य सरकारों जैसे महाराष्ट्र, गुजरात, पश्चिम बंगाल, आंध्र प्रदेश, केरल और तमिलनाडु इत्यादि द्वारा निर्मित पाठ्यपुस्तकों के साथ तुलनात्मक अध्ययन करने पर आश्चर्यजनक निष्कर्ष निकले।[48] वेर्नोफ्फ के अनुसार एनसीईआरटी और तमिलनाडु राज्य द्वारा निर्मित पाठ्यपुस्तकें अपने अभिविन्यास में सबसे अधिक धर्मनिरपेक्ष हैं, जबकि गुजरात में उपयोग की जाने वाली पाठ्यपुस्तकें सबसे अधिक सांप्रदायिक हैं।[49] एनसीईआरटी द्वारा निर्मित पाठ्य–पुस्तकों में 'भारतीय राष्ट्र' और धर्मनिरपेक्षता की कांग्रेस की धारणाएँ व्याप्त हो गई हैं। स्कूल स्तर पर स्थानीय और क्षेत्रीय इतिहास को बाहर करने का नीतिगत निर्णय लिया गया था। यह आशंका थी कि इससे 'संकुचितवाद और अंधराष्ट्रवाद' को बढ़ावा मिलने का खतरा बढ़ सकता है।[50]

शुरूआत से ही एनसीईआरटी का राजनीतिक अभिविन्यास आधुनिक और प्रगतिशील रहा है और इसका उद्देश्य धर्मनिरपेक्षता को बढ़ावा देना था। एनसीईआरटी के लेखक विद्वान् रोमिला थापर, सतीश चंद्र, अर्जुन देव जैसे बहुत प्रसिद्ध धर्मनिरपेक्ष इतिहासकार थे, जो एक धर्मनिरपेक्ष राजनीति और समाज के निर्माण को वैध बनाने के लिए भारत के समग्र अतीत और परंपरा पर जोर देने के लिए उत्सुक थे। इसलिए ग्यारहवीं कक्षा के लिए एनसीईआरटी पाठ्यपुस्तक 'मध्यकालीन भारत' की प्रस्तावना में कहा गया है :

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

भारत की सांस्कृतिक विरासत की समझ को बढ़ावा देना, अंधविश्वास और रूढ़िवाद का मुकाबला करना, और एक धर्मनिरपेक्ष, मानवीय और दूरंदेशी दृष्टिकोण को बढ़ावा देना शिक्षा के प्रमुख उद्देश्यों में से हैं जो इतिहास पढ़ाने के मूल उद्देश्य भी हैं।[51]

भारत में साम्प्रदायिक ताकतें इस बात से भली–भांति परिचित हैं कि साम्प्रदायिकता अनिवार्य रूप से एक विचारधारा है और समाज को देखने का एक विशेष तरीका भी। छोटे बच्चों के कोमल रचनात्मक दिमाग से ही इसे शुरू करने के लिए इससे (स्कूल) बेहतर जगह और नहीं हो सकती है। उदाहरण के लिए, कई वर्षों से आरएसएस ने अपने सरस्वती शिशु मंदिरों और विद्या भारती प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों के माध्यम से और अपनी शाखाओं के माध्यम से इस परियोजना को अंजाम दिया है। उदाहरण के लिए, उन्होंने सरस्वती शिशु मंदिर प्रकाशन द्वारा कक्षा चार और पांच के लिए प्रकाशित पुस्तकों में भारत में हिंदुओं के अलावा अन्य सभी समुदायों को विदेशी के रूप में चित्रित किया है, मध्ययुगीन काल को मुस्लिम काल के रूप में गलत तरीके से वर्णित किया और अंग्रेजों के नक्शेकदम पर चलते हुए, इस अवधि को एक महान उत्पीड़न और गिरावट के रूप में चित्रित किया है। भारतीयों में देशभक्ति और वीरता की भावना जगाने के नाम पर ये किताबें झूठ फैलाती हैं, पौराणिक धार्मिक शख्सियतों को वास्तविक ऐतिहासिक शख्सियतों की तरह मानती हैं और बेतुके दावे करती हैं; जैसे कि कुतुब मीनार का निर्माण समुद्रगुप्त ने किया था। उनका दावा है कि अशोक द्वारा अहिंसा की वकालत करने से "कायरता" फैल गई और भारत की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष मुसलमानों के खिलाफ "धार्मिक युद्ध" बन गया, और इसी तरह यह आश्चर्य की बात नहीं है कि महात्मा गांधी, अहिंसा के दूत और स्वतंत्रता संग्राम के लोकनायक, ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ हिंदुओं और मुसलमानों के एक आम संघर्ष के रूप में उनके शब्दकोष में 'दुष्टात्मा' के रूप में वर्णित हैं।[52]

एनसीईआरटी द्वारा नियुक्त पाठ्यपुस्तक मूल्यॉंकन पर राष्ट्रीय संचालन समिति स्वयं इस निष्कर्ष पर पहुंची कि "इन पुस्तकों का मुख्य उद्देश्य छोटे बच्चों को देशभक्ति की आड़ में धीरे–धीरे कट्टर मूर्खों में बदलना है।"[53] इतिहास सांप्रदायिक ताकतों के लिए विशेष रुचि का विषय है क्योंकि भारत की उनकी धारणा अतीत की सांप्रदायिक व्याख्या पर आधारित है और

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

सांप्रदायिक विचारधारा इतिहास की विकृत और मनगढ़ंत प्रस्तुति पर टिकी हुई है। यह न केवल गलत व्याख्याओं के अधीन है, यह तथ्यों के विरूपण, चयनात्मक और पक्षपातपूर्ण सामग्री सुधार के अधीन भी है। इतिहास की सांप्रदायिक व्याख्या ने न केवल पौराणिक कथाओं और इतिहास के बीच के अंतर को मिटा दिया है, बल्कि कुछ लोगों को विदेशियों के रूप में चित्रित करके समाज में विभाजन पैदा कर रहा है। साम्प्रदायिक उद्देश्य से इतिहास का पुनर्लेखन नागरिक अधिकार आंदोलनों, उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष, मानवाधिकारों के लिए संघर्ष, समानता, स्वतंत्रता और शैक्षिक और धार्मिक सुधार आंदोलनों की भूमिका को कम करने जा रहा है। शिक्षा में हेरफेर करने के लिए एक पक्षपातपूर्ण और सांप्रदायिक कदम के परिणामस्वरूप बाजार आधारित नव-उदारवादी तर्कसंगतता, राज्य हिंसा और फासीवादी सैन्यवाद की सर्वोच्चता स्थापित हो सकती है।

पाकिस्तानी विमर्श में औरंगजेब को एक ऐसे नायक के रूप में प्रस्तुत किया गया है जिसने इस्लामी साम्राज्य की सीमाओं से लड़ाई लड़ी और उसका विस्तार किया। औरंगजेब को एक पवित्र मुस्लिम के रूप में दर्शाया गया है, जिसने संगीत पर प्रतिबंध लगाकर और जजिया लगाकर इस्लामी कानूनों को फिर से लागू किया। जबकि भारतीय विमर्श में अकबर को एक सहिष्णु शासक के रूप में चित्रित किया गया है, जिसने अपने हिंदू नागरिकों के साथ सम्मान के साथ व्यवहार किया, अंतर्धार्मिक संवाद को प्रोत्साहित किया और जजिया को भी समाप्त कर दिया। पाकिस्तानी आख्यानों में अकबर को विभिन्न धार्मिक दर्शनों के साथ उनके प्रयोगों और उनके प्रयासों के कारण संदेह के साथ देखा जाता है। अपने स्वयं के धर्म का निर्माण, दीन-ए-इलाही को ईश्वर के वचन के साथ हस्तक्षेप करने का मानव प्रयास माना जाता है। इसके विपरीत, औरंगजेब को एक सच्चे आस्तिक के रूप में माना जाता है, जिसने धर्म और दरबार से भ्रष्ट प्रथाओं को हटा दिया और एक बार फिर साम्राज्य को शुद्ध कर दिया। इस्लाम की अधिक शुद्धतावादी व्याख्या के पक्ष में अपने पूर्ववर्तियों के समकालिक और यहाँ तक कि राजनीतिक रूप से समीचीन प्रथाओं को छोड़ने के लिए भारतीय आख्यानों में उसी कारण से उससे घृणा की जाती है, जिसके परिणामस्वरूप अंततः साम्राज्य का विघटन हुआ।[54]

अकबर के सन्दर्भ में तारा चंद लिखते हैं, "वे सभी धर्मों को समान

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

रूप से देखते थे और धर्म के आधार पर अपनी प्रजा के बीच कोई अंतर नहीं करना अपना कर्तव्य समझते थे। उन्होंने गैर–मुसलमानों को सर्वोच्च पदों पर नियुक्त किया।"[55] हालांकि यह स्वीकार किया जाता है कि उसने हिंदू शासकों के साथ राजनीतिक और सैन्य गठबंधन किया जो हो सकता है कि समीचीनता के विचार से किया हो,अन्य इतिहासकार धार्मिक सद्भाव और विभिन्न धर्मों में रुचि के प्रति उनकी वास्तविक प्रतिबद्धता के अधिक स्थायी संकेतों की ओर इशारा करते हैं, जैसे कि राजपूत महिलाओं से उनका विवाह, रामायण जैसे महाकाव्यों में उनकी रुचि, और हिंदू शिक्षा को बढ़ावा देने में उनका उत्साह। इतिहासकार अकबर द्वारा गैर–मुसलमानों पर लगाए जाने वाले जजिया को समाप्त करने और धार्मिक प्रश्नों पर अंतिम अधिकार की उनकी धारणा की ओर इशारा करते हैं, जिस पर मुस्लिम धर्मशास्त्रियों के बीच मतभेद हो सकते हैं, जिससे उलेमा के अधिकार को कम किया जा सकता है। अकबर की सफलता को आश्चर्यजनक बताते हुए, जवाहरलाल नेहरू लिखते हैं कि अकबर ने "उत्तर और मध्य भारत के विविध तत्त्वों के बीच एकता की भावना पैदा की।"[56] कई भारतीय इतिहासकार औरंगजेब के आचरण के बारे में अधिक कठोर दृष्टिकोण अपनाने के लिए इच्छुक रहे हैं। जैसे जदुनाथ सरकार लिखते हैं कि औरंगजेब का इरादा भारत में एक इस्लामिक राज्य की स्थापना के अलावा कुछ भी नहीं था, एक ऐसा उद्देश्य जिसे "पूरी आबादी के इस्लाम में धर्मांतरण और हर प्रकार के असंतोष के विलुप्त होने" के बिना पूरा नहीं किया जा सकता था और इस परिदृश्य को और अधिक पूर्ण बनाने के लिए उन्होंने प्रस्तावित किया कि गैर–मुसलमानों पर जजिया, जिसे औरंगजेब ने 1679 में फिर से लागू किया था, उसका उद्देश्य हिंदुओं को जबरन इस्लाम में परिवर्तित करना था, हालांकि वह इस दृष्टिकोण को प्रमाणित करने के लिए साक्ष्य नहीं जुटा सके।[57]

कुछ इतिहासकारों का कहना है कि यदि औरंगजेब इतना क्रूर और सांप्रदायिक था तो औरंगजेब के शासनकाल में प्रतिष्ठित पदों पर कार्यरत हिंदुओं की संख्या उसके पिता शाहजहाँ के समय में 24.5 प्रतिशत से बढ़कर उसके अपने शासन के चौथे दशक में 33 प्रतिशत कैसे हो गई। इसके अलावा, वे सुझाव देते हैं कि औरंगजेब ने हिंदू मंदिरों को अंधाधुंध रूप से नष्ट नहीं किया, जैसा कि आमतौर पर माना जाता है। बल्कि उसने विद्रोह का सामना करने पर ही मंदिरों को नष्ट करने का निर्देश दिया था।

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

यह लगभग निश्चित रूप से मथुरा क्षेत्र में केशव राय मंदिर के मामले में सही था, जहाँ जाट विद्रोह ने जोर पकड़ लिया था और फिर भी प्रतिशोध की इस नीति को संशोधित किया गया हो सकता है, क्योंकि दक्कन में हिंदू मंदिरों को शायद ही कभी नष्ट किया गया था।[58]

जैसा कि इतिहासकार हरबंस मुखिया ने तर्क दिया है, "एक बार जब कोई यह स्वीकार कर लेता है कि अकबर की उदार धार्मिक नीति केवल उसके अपने उदार दृष्टिकोण का प्रतिबिंब थी, तो निष्कर्ष अपरिहार्य हो जाता है, उदाहरण के लिए, औरंगजेब की कट्टर धार्मिक नीति उसके कट्टर स्वभाव से निकली।"[59]

महमूद गजनी और औरंगजेब के रूप में विवादित इतिहास के केंद्र में कोई अन्य ऐतिहासिक शासक नहीं है। यह दोनों राष्ट्रवादी व्याख्याओं में विशेष स्थान रखते हैं। जहाँ एक पक्ष उन्हें समर्पित मुसलमानों के रूप में देखता है जो एक मूर्तिपूजक भारत में इस्लाम के सच्चे संदेश को फैलाने पर तुले हुए हैं वहीं दूसरा उन्हें निंदनीय चरित्रों के रूप में देखता है जिन्होंने अपनी कट्टरता के कारण बहुसंख्यक आबादी पर क्रूरतापूर्वक अत्याचार किया। ये दोनों आख्यान अत्यधिक समस्याग्रस्त हैं क्योंकि इस समस्याग्रस्त ढांचे की अंतर्निहित धारणाएं हैं जो औपनिवेशिक शासन की विरासत हैं। जब तक यह ढाँचा अस्तित्व में रहेगा, ये ऐतिहासिक लड़ाइयाँ हमारी कक्षाओं में नहीं लड़ी जाती रहेंगी बल्कि भारत और पाकिस्तान की गलियों और शहरों में जहाँ बार–बार उनका नाम बदल दिया जाता है, जबकि इतिहास की कक्षाएं खाली रहती हैं और इतिहास की वस्तुनिष्ठता पर धूल जम चुकी होती है।

1977 में जब हिंदुत्व पहचान की ताकतें भारत सरकार में पहली बार सत्ता में आईं तो उस पीढ़ी के कुछ बेहतरीन इतिहासकारों द्वारा एनसीईआरटी के लिए लिखी गई स्कूली पाठ्यपुस्तकों पर प्रतिबंध लगाने का प्रयास किया गया। यह प्रयास न केवल इसलिए विफल हुआ क्योंकि एनसीईआरटी ने स्वयं इस तरह के कदम का विरोध किया बल्कि इस मुद्दे पर एक देशव्यापी विरोध आंदोलन भी चलाया गया था।[60] नई व्यवस्था के तहत लिखी जा रही एनसीईआरटी की पाठ्यपुस्तकों का एक अलग राजनीतिक एजेंडा है। भारतीय समाज के बहुलवाद की बहुत सारी चर्चाओं के बावजूद, आम अखिल भारतीय संस्कृति राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा नीति का विषय है और यह आम भारतीय संस्कृति बहुसंख्यक समुदाय की

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

संस्कृति है। इस्लाम द्वारा धार्मिक और राजनीतिक वर्चस्व एवं उत्पीड़न तथा हिंदू धर्म की सहिष्णुता, उनके समावेशन और बहिष्करण में वर्तमान पाठ्य पुस्तकों का जोर है। वास्तव में इन दो स्पष्ट रूप से परस्पर विरोधी दृष्टिकोणों में उनके बुनियादी सिद्धांत समान हैं।

पाठ्यपुस्तकों के दो सेटों के बीच जो समानता है वह है उनकी सांप्रदायिक व्याख्या। पहला सेट हिंदू–मुस्लिम सद्भाव पर जोर देता है और वर्तमान दूसरा सेट हिंदू–मुस्लिम संघर्ष पर जोर देता है। जबकि सांप्रदायिक सद्भाव प्रतिनिधित्व के आधार के रूप में बहुसांप्रदायिकता है, सांप्रदायिक संघर्ष की व्याख्या में इसके आधार के रूप में बहुसंख्यक सांप्रदायिकता है। इसलिए, पाठ्य–पुस्तकों के दोनों सेटों में इतिहास का उपचार एक ही मूल से निकलता है, यानी सांप्रदायिक व्याख्या। सद्भाव की थीसिस में सांप्रदायिक व्याख्या निहित है, जबकि सांप्रदायिक संघर्ष में यह अधिक कठोर और स्पष्ट है। यदि राष्ट्रवाद और धर्मनिरपेक्षता की अवधारणाओं में उनके धार्मिक आधार के बिना धार्मिक संदर्भ की प्रधानता है, तो बहुसंख्यकवाद की स्थिति हिंदुत्व विचारधारा के लिए तार्किकता का अगला कदम है। यह आंशिक रूप से भारतीय इतिहास लेखन की सीमाएँ हैं जो पाठ्य–पुस्तकों के दोनों सेटों में परिलक्षित होती हैं, लेकिन विशेष रूप से एनसीईआरटी पाठ्य–पुस्तकों के पहले सेट में; सांप्रदायिकता के वर्ग और भौतिक आधार की व्याख्या भारतीय इतिहास–लेखन में एक प्रमुख अवगुण बना हुआ है।[61]

यह इस संदर्भ में है कि एनसीईआरटी ने एक नया राष्ट्रीय पाठ्यचर्या ढांचा पेश किया है जो वर्तमान भारी स्कूल बैग के वजन को कम करने के नाम पर दसवीं कक्षा तक स्कूली पाठ्यपुस्तकों से इतिहास को हटाने का प्रयास करता है। इतिहास से केवल कुछ निश्चित विषयों को अब नागरिक शास्त्र और भूगोल के साथ एकीकृत किया जाना है और एक विषय के रूप में पढ़ाया जाना है। ग्यारहवीं और बारहवीं कक्षा के लिए मौजूदा इतिहास की किताबों के साथ तब तक छेड़छाड़ की जा रही है जब तक कि नई किताबें तैयार नहीं हो जातीं। विडंबना यह है कि वर्तमान शासन पाकिस्तान की नकल कर रहा है जिसने 1970 के दशक में इतिहास को एक विशेष स्तर तक रखने और फिर वृहद स्तर पर एक विकृत, एक तरफा संस्करण निर्धारित करने के लिए एक समान कदम उठाया था। इतिहास से

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

असहज, संकीर्ण, सांप्रदायिक और अलोकतांत्रिक एजेंडा वाले शासक अक्सर इतिहास को दबाने या विकृत करने की कोशिश करते हैं।[62]

ज्ञान के वि–औपनिवेशीकरण की एक धारा का प्रतिनिधित्व मार्क्सवादी भी करते हैं। भारत के सन्दर्भ में रजनी पाम दत्त और एमएन रॉय जैसे प्रारंभिक मार्क्सवादियों ने वर्ग संघर्षों की एक द्वंद्वात्मक प्रक्रिया के रूप में इतिहास की अपनी अवधारणा के साथ राष्ट्रवाद के दृष्टिकोण से परे जाकर भारतीय समाज के भीतर ही मौलिक संघर्षों को स्थापित किया। "अर्थव्यवस्था की प्रधानता" पर मार्क्सवाद का जोर भारतीय समाज को विशेष रूप से धार्मिक मतभेदों, जाति और जातीयता की समस्याओं को समझाने में एक उपयोगी उपकरण था। सामाजिक और आर्थिक मुद्दों पर मार्क्सवादी जोर ने संस्कृति और परंपरा की आलोचना को सन्निहित किया, क्योंकि संस्कृति के कई तत्त्वों को प्रतिगामी माना जाता था और इसलिए सार्वभौमिक ऐतिहासिक प्रगति के प्रक्षेप वक्र के लिए हानिकारक था। इससे आध्यात्मिकता का मूल्य भी कम हो गया, जिसे कई लोगों ने भारतीय जीवन शैली की सबसे विशिष्ट विशेषता के रूप में देखा था। मार्क्सवादियों के लिए इतिहास ने तब एक भौतिक विकासवादी प्रक्रिया का अर्थ लिया, जिसे आध्यात्मिक परंपराएँ वैचारिक स्तर पर बाधित कर रही थीं। दरअसल, एम. एन. रॉय ने भारत में धर्म के मूल्य को कम करके समझा और इससे धर्म के महत्त्व को ग्रहण लगना शुरू हो गया और इस प्रकार भारतीयों के धार्मिक मूल को रेखांकित करने के हिंदू राष्ट्रवादी प्रयासों पर सवाल उठाया। इतिहास के मार्क्सवादी दर्शन के प्रति सहानुभूति रखने वाले नेहरू ने भी भारत की प्रमुख समस्याओं को आर्थिक प्रकृति का माना। भारतीय समाज में कोई भी संघर्ष जो धर्म, जातीयता या जाति से उत्पन्न होता है, उसे उपनिवेशवाद के आर्थिक और राजनीतिक संदर्भ के उत्पाद के रूप में देखा गया। प्रगति और आधुनिकता को लेकर नेहरू के विचार ने नागरिक समाज पर एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण को बढ़ावा देने और रूढ़िवादी धर्म, जाति और इसकी असमानताओं की बेड़ियों की आलोचना में तब्दील किया। 1970 के दशक तक मार्क्सवादी इतिहास लेखन में सामान्य प्रवृत्ति को भी जाति, रिश्तेदारी और धर्म के आधार पर संगठित सामाजिक रूप से अधीनस्थ समूहों द्वारा विद्रोहों को पिछड़ी चेतना को प्रकट करने के रूप में माना जाता था। इसलिए, विश्लेषण के मार्क्सवादी साधनों के साथ काम करने वाले

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

इतिहासकार अक्सर जाति और धर्म की "पिछड़ी" विचारधाराओं की आलोचना करते हैं।[63]

इसके विपरीत, हिंदू राष्ट्रवादी इतिहास लेखन ने भारतीय इतिहास की मार्क्सवादी अवधारणा पर प्रश्न उठाया और भारतीय सभ्यता और संस्कृति की प्राचीनता और गौरव को वापस फ्रेम में स्थानांतरित करके भारतीय अतीत में घटनाओं का एक वैकल्पिक पठन प्रदान किया। यह वैचारिक टूटन ऐतिहासिक घटनाओं के महत्त्व और एक बड़े भारतीय आख्यान में अभिनेताओं की भूमिका का विश्लेषण करने में भिन्न इतिहासकारों की व्याख्याओं की बहुलता को भी दर्शाता है। भारत की स्वतंत्रता के बाद के दशकों में भारतीय अतीत की प्रकृति और राज्य के चरित्र पर विवादों के साथ संघर्ष होता रहा है, जिसे 1977 में इतिहास की पाठ्यपुस्तकों के क्षेत्र में अपने चरम पर पहुंचा दिया गया, जब सरकार ने स्वतंत्र भारत में पहली बार पाठ्यपुस्तकों को सेंसरशिप करने का प्रयास किया था।[64]

अतीत का प्रतिनिधित्व हिंदू राष्ट्रवादियों के विमर्श में मौलिक हैं, वे कल्पना करते हैं कि भविष्य अतीत में गौरव या संघर्ष के इतिहास में निहित है और अतीत का राजनीतिक दुरुपयोग उनकी पहचान के लिए महत्त्वपूर्ण है। भविष्य की कार्रवाई के आधार के रूप में अतीत के एक विशेष मॉडल की सदस्यता ने उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश के राज्य सरकारों को इतिहास को फिर से लिख़ने और वैदिक ग़णित को पेश क़रने के लिए प्रेरित किया। इतिहास की पाठ्यपुस्तकों में भाजपा की विचारधारा के अनुरूप अतीत का पाठ प्रस्तुत किया गया था। संशोधित पुस्तकों में यह विचार शामिल था कि आर्य भारत के मूल निवासी थे, मुगलों की धार्मिक कट्टरता को रेखांकित किया, गांधी से सम्बंधित पाठ्यक्रम को हटा दिया गया और इसमें राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) के संस्थापक पर एक स्तवन के साथ बदल दिया और अंबेडकर और सुभाष चंद्र बोस पर कुछ आख्यानों को शामिल किया।[65] 1993 में पाठ्यपुस्तक मूल्यॉंकन पर राष्ट्रीय संचालन समिति ने उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश, तमिलनाडु, केरल और असम राज्यों में उपयोग की जा रही पाठ्यपुस्तकों के साथ–साथ सरस्वती शिशु मंदिर प्रकाशन और मरकजी मकतबा इस्लामी की पुस्तकों की समीक्षा की और निष्कर्ष निकाला कि कई पाठ्यपुस्तकों में तथ्यात्मक अशुद्धि, विकृतियां और

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

भारी सांप्रदायिक पूर्वाग्रह थे। भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में दक्षिणपंथी दलों का पुनरुत्थान 1980 के दशक में विशेष रूप से उल्लेखनीय है और इसने केंद्र स्तर पर राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने के बाद इतिहास को फिर से लिखने के उपक्रम को अंजाम दिया।[66]

सन् 2000 का विवाद भारत में स्कूली पाठ्यपुस्तकों द्वारा शुरू किया गया पहला विवाद नहीं था। हालांकि, इसी तरह की बहस 1977 में छोटे पैमाने पर शुरू हुई थी। इस साल एक विपक्षी दल, जनता पार्टी, स्वतंत्रता के बाद पहली बार केंद्र में सत्ता में आई जिसने भारत में द्वि–दल या बहु–दलीय लोकतंत्र की शुरुआत को चिह्नित किया। 1977 और 1979 के बीच जनता पार्टी ने पुराने गांधीवादी मोरारजी देसाई के नेतृत्व में केंद्र में शासन किया। इस जनता सरकार के दौरान राष्ट्रीय स्तर पर इतिहास की स्कूली पाठ्यपुस्तकों के निषेध/विलोपन/पुनर्लेखन/पुनर्स्थापित करने पर विवाद शुरू हो गया, जब सरकार पर पाठ्यक्रम को संशोधित करने और पाठ्यक्रम में राष्ट्रवादी/साम्प्रदायिक विचारधारा को आगे बढ़ाने और कुछ पाठ्यपुस्तकों को प्रतिबंधित करने का आरोप लगाया गया।

सांप्रदायिकता और इतिहास की शिक्षा इससे पहले भी चर्चा में थी और एक इतिहासकार और विवादास्पद इतिहास पाठ्यपुस्तकों के लेखकों में से एक बिपन चंद्रा (पुस्तक 1977 और 2000 दोनों में विवादों के केंद्र में थी) ने तर्क दिया कि "भारतीय राष्ट्रवाद के उलटफेर ने राष्ट्रीय इतिहास के सांप्रदायिक परिप्रेक्ष्य के विकास को पूरा किया"। चंद्रा ने अपने तर्क में आगे कहा, पिछले 100 वर्षों में सांप्रदायिकता के प्रसार के साथ भारतीय इतिहास के शिक्षण का बहुत बड़ा संबंध है। साम्प्रदायिक ऐतिहासिक उपागम भारत में साम्प्रदायिकता की मुख्य विचारधारा रही है और है। इतिहासकारों के बीच सांप्रदायिकता मुख्य रूप से राष्ट्रवाद के कारण फैल गई। साम्प्रदायिकता ने उन्हें साम्राज्यवाद का विरोध किए बिना राष्ट्रवादी महसूस करने में सक्षम बनाया।[67]

बीसवीं शताब्दी की शुरुआत में, विशेष रूप से इसकी दूसरी तिमाही के दौरान, कुछ इतिहासकारों ने भारतीय इतिहास के उस संस्करण का जोरदार विरोध किया, जिसमें मुस्लिम शासकों द्वारा हिंदुओं के उत्पीड़न और उसके प्रति वीर हिंदू प्रतिरोध की बात की गई थी, जो ब्रिटिश और साथ ही भारतीय सांप्रदायिक इतिहासकारों द्वारा दिया गया संस्करण था जो

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के सांप्रदायिक विंग को दर्शाता है। साम्प्रदायिक इतिहास लेखन के दृष्टिकोण में कुछ भिन्नता थी; हिंदू सांप्रदायिकता ने मध्ययुगीन शताब्दियों को हिंदुओं पर विदेशी मुस्लिम प्रभुत्व की लंबी अवधि के रूप में देखा। अन्य स्टीरियोटाइप भी बनाए गए। यदि हिंदू मुसलमानों से अपनी लड़ाई हार गए, तो यह आपसी मतभेदों के कारण था; यदि मध्यकालीन भारतीय इतिहास दो प्रमुख समुदायों के बीच निरंतर संघर्ष की कहानी थी, तो यह मुसलमानों के अपने पूर्ववर्तियों, ग्रीक, शक, हूण आदि के विपरीत अपनी अलग पहचान को बनाए रखने और दावा करने के दृढ़ संकल्प के कारण था, जो कि यहाँ आकर बस गए थे। लेकिन एक बार इस देश में बसने के बाद भारतीय (हिंदू) जीवन की मुख्यधारा में अपनी स्वतंत्र पहचान खो दी थी; भारतीय (हिंदू) सभ्यता को हमेशा उदारवाद के लिए जाना जाता है, जो किसी भी तत्त्व को अपनाने में मित्रवत हथियारों के साथ आता है, यह मुस्लिम हैं जिन्होंने भारतीय जीवन की मुख्यधारा में अपनी अलग पहचान को विलय करने से इनकार कर दिया। वास्तव में उन्होंने इस धारा के पाठ्यक्रम को जबरन बदलने की कोशिश की। दूसरी ओर, मुस्लिम साम्प्रदायिकता ने उन शासनों पर विचार किया, जिन्होंने इस्लामी गौरव के शिखर के रूप में अपनी इस्लामी पहचान को अत्यधिक महत्त्व दिया। हालांकि, हिंदू और मुस्लिम दोनों ने सांप्रदायिक इतिहास लेखन (साथ ही ब्रिटिश) की मूल धारणा के द्वारा अपने–अपने विचारों की एकता का गठन किया। मध्यकालीन भारत में हिंदुओं और मुसलमानों को लगातार संघर्ष में देखते रहना इसी का प्रतिफलन है।[68]

मध्यकालीन भारत में अन्तहीन साम्प्रदायिक संघर्ष की इसी धारणा का राष्ट्रवादी इतिहासकार विरोध कर रहे थे। उन्होंने मध्ययुगीन भारत के मुस्लिम शासकों की धार्मिक प्रेरणा की वास्तविकता पर सवाल उठाया; उन्होंने मध्ययुगीन भारत में सांप्रदायिक सद्भाव का सुझाव देने के लिए साक्ष्य प्रस्तुत किया; उन्होंने पिछली शताब्दियों में विचारों के क्षेत्र में, संस्कृति के क्षेत्र में, जीवन–शैली के क्षेत्र में दो बड़े समुदायों के बीच पारस्परिक संपर्क की संस्कृति पर काफी हद तक बल दिया। इसी बल से "सामासिक संस्कृति" की अवधारणा विकसित हुई थी।[69] मध्यकालीन भारतीय इतिहास के अध्ययन को धर्मनिरपेक्ष बनाने में राष्ट्रवादी इतिहासकारों द्वारा दिया गया योगदान किसी भी मानक से अत्यंत महत्त्वपूर्ण था। हालांकि, वे वास्तव में

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

सांप्रदायिक इतिहास लेखन का विरोध कर रहे थे। यदि सांप्रदायिक इतिहास लेखन ने हिंदू नागरिकों के मुस्लिम उत्पीड़न का सुझाव देने के लिए सबूत सामने लाए, तो राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने मुस्लिम शासकों द्वारा दिखाए गए सहनशीलता के मामलों का हवाला दिया; यदि सांप्रदायिक इतिहास लेखन ने समुदायों के बीच संघर्ष के उदाहरणों को उजागर किया, तो राष्ट्रवादी इतिहास लेखन ने उनके बीच सहयोग के अन्य उदाहरणों को उजागर किया।

1998 में भाजपा राष्ट्रीय स्तर पर और दूसरी बार गुजरात में सत्ता में आई, जहाँ पिछले एक दशक में आरएसएस से जुड़े मुख्यमंत्रियों ने सत्ता संभाली हुई थी। गुजरात और राष्ट्रीय स्तर पर संघ की सत्ता में दखलंदाजी के परिणामस्वरूप दो चीजें हुईं; पहला, मुस्लिम और ईसाई समूहों को लक्षित करने के लिए भेदभावपूर्ण या असमान कानून लागू करना; और दूसरा, राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर पाठ्यपुस्तकों का व्यवस्थित पुनरीक्षण।[70] जबकि भाजपा ने अक्सर अपने साथी संघ परिवार संगठनों की हिंसा और अधिक चरम स्थितियों से खुद को दूर कर लिया है और कई विद्वान् और राजनीतिक पर्यवेक्षक भाजपा को भारतीय राजनीति में एक उदारवादी ताकत मानते हैं, परन्तु भारत में पाठ्यपुस्तक संशोधन में इसकी भूमिका के विश्लेषण से पता चलता है कि यह हिंदू राष्ट्रवादी विचारधारा के मूल सिद्धांतों और इतिहास के अपने संशोधनवादी दृष्टिकोण को दृढ़ता से प्राथमिकता देता है। 1998 में जब भाजपा पहली बार सत्ता में आई तो राष्ट्रीय स्तर पर स्कूली पाठ्यक्रम विकास और समीक्षा निकाय, राष्ट्रीय शिक्षा और अनुसंधान प्रशिक्षण परिषद् (एनसीईआरटी) में संघ के समर्थकों को रखा गया था। अगले कई वर्षों में एनसीईआरटी ने संघ के एजेंडे के अनुरूप स्कूल पाठ्यक्रम में बदलाव किए।[71] भाजपा सरकारों वाले राज्यों ने इन परिवर्तनों को लागू किया गया। 2001 में गोवा के भाजपा के मुख्यमंत्री मनोहर पर्रिकर ने ग्रामीण क्षेत्रों के इक्यावन सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के प्रबंधन को संघ परिवार की शैक्षिक शाखा विद्या भारती एजुकेशनल ट्रस्ट में बदल दिया। 2004 में राष्ट्रीय स्तर पर भाजपा की हार के साथ पाठ्यपुस्तक में कुछ बदलाव उलट दिए गए हैं।

हिंदुत्व इतिहास ईसाइयों और मुसलमानों को "विदेशी" के रूप में वर्णित करता है और मध्यकालीन भारत को मुस्लिम निरंकुशता और गिरावट

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

के काल के रूप में चित्रित करता है। कई दशकों से आरएसएस द्वारा संचालित जमीनी संगठनों और शैक्षणिक संस्थानों– सरस्वती शिशु मंदिर और विद्या भारती प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों ने भारतीय इतिहास के हिंदू–केंद्रित संस्करण का प्रसार करने की मांग की है। उदाहरण के लिए, "प्राथमिक विद्यालय के छात्रों के लिए कुछ पुस्तकों ने भारत में हिंदुओं के अलावा अन्य सभी समुदायों को विदेशी के रूप में चित्रित किया। ये किताबें भारतीयों के बीच देशभक्ति और वीरता पैदा करने के नाम पर झूठ फैलाती हैं, वास्तविक ऐतिहासिक आंकड़ों की तरह पौराणिक धार्मिक आंकड़ों का प्रस्तुतीकरण करती हैं और बेतुका बनाती हैं। इस तरह के दावे करते हैं कि भारत की आजादी का संघर्ष मानो मुसलमानों के खिलाफ 'धार्मिक युद्ध' बन गया था।"[72]

गुजरात में भाजपा सरकार निश्चित रूप से हिंदू राष्ट्रवादी ढांचे के साथ अपनी पाठ्यपुस्तकों को संशोधित करने वाली पहली सरकार थी। संशोधित श्रृंखला की पहली पुस्तक कक्षा आठ के लिए सामाजिक विज्ञान की पाठ्यपुस्तक, ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के खिलाफ आंदोलन के सबसे कट्टरपंथी और राष्ट्रवादी तत्त्वों पर केंद्रित है, जिसके कवर पर आंदोलन के सबसे उग्रवादी नेताओं में से कई की छवियाँ हैं। गुजरात और उत्तर प्रदेश में इतिहास की पाठ्यपुस्तकें नियमित रूप से मिथक और ऐतिहासिक तथ्य का मेल करती हैं। उदाहरण के लिए, 1931 में गांधी के नेतृत्व में दांडी मार्च, राष्ट्रवादी संघर्ष का एक उच्च बिंदु, भगवान राम की पंचवटी की पौराणिक प्रगति से जुड़ा है। इस तरह की तुलनाओं में पौराणिंक घटनाओं के साथ एक ऐतिहासिक तारीख को जोड़ते हुए धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवाद में एक महत्त्वपूर्ण घटना को पवित्र करने का प्रभाव होता है।[73] गुजरात राज्य की पांचवीं कक्षा की सामाजिक अध्ययन पाठ्यपुस्तक में इतिहास के रूप में पौराणिक कथाओं पर नौ कहानियां हैं।[74] ज़िन राज्यों में भाजपा सत्ता में आई है, उन्होंने गुजरात मॉडल का अनुसरण किया है। राजस्थान राज्य में पाठ्यपुस्तकें, जहाँ 2003 में भाजपा सत्तारूढ़ दल बनी थी, हिंदू राष्ट्रवादी विचारों को शामिल करने के लिए संशोधित की गई थी। अन्य राज्यों (जहां भाजपा सत्ता में है) ने एनसीईआरटी द्वारा निर्धारित 2005 के राष्ट्रीय पाठ्यचर्या ढांचे की अनदेखी करने और अपनी स्वयं की पाठ्यपुस्तकों का उपयोग करने का संकल्प लिया है।[75]

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

2002–2004 की एनसीईआरटी पाठ्यपुस्तकों ने भाजपा के युग के दौरान वाजपेयी को प्रधान मंत्री के रूप में प्रभावित किया, उन्हें शिक्षाविदों और नागरिकों से समान रूप से महत्त्वपूर्ण मात्रा में प्रतिक्रिया मिली। यह आलोचना मुख्य रूप से ऐतिहासिक घटनाओं में किए गए परिवर्तनों, छोड़ी गई जानकारी और तथ्यात्मक त्रुटियों के जवाब में थी, इन सभी को 2003 में इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस (आईएचसी) द्वारा तैयार की गई एक रिपोर्ट में संकलित किया गया था जिसका शीर्षक "हिस्ट्री इन द न्यू एनसीईआरटी टेक्स्टबुक्स : ए रिपोर्ट एंड इंडेक्स ऑफ़ एरर्स" था। द हिंदू में यह लिखा गया था कि आईएचसी को लगता है कि एनसीईआरटी, की नई इतिहास पाठ्यपुस्तकों से भाषाई और तथ्यात्मक त्रुटियों को हटाने से उन्हें छात्रों के लिए स्वीकार्य शिक्षण उपकरण में परिवर्तित नहीं किया जा सकेगा। जबकि बहुत सी समस्याएँ एक बहुत ही मजबूत, अराजक और सांप्रदायिक पूर्वाग्रह के साथ इतिहास को प्रस्तुत करने से उत्पन्न होती हैं।[76]

हालांकि, भारत में इतिहास की पाठ्यपुस्तकों के सांप्रदायिकरण की परियोजना 2000 के दशक की शुरुआत में भाजपा सरकार द्वारा शुरू की गई एक नई घटना है, लेकिन अति–हिंदू राष्ट्रवादियों द्वारा लिखी गई सांप्रदायिक इतिहास की किताबें निश्चित रूप से भारत में नई घटना नहीं है। चूंकि हिंदू–मुस्लिम विरोध ने वह मुख्य आधार प्रदान किया है जिस पर आरएसएस 1925 में अपने जन्म के बाद से फला–फूला है, यह आश्चर्य की बात नहीं है कि इसने मध्ययुगीन भारत के एक दृष्टिकोण को पेश करने पर अधिक ध्यान दिया है जो इसके संस्थापक हेडगेवार के मुसलमानों के "यवन सांपों को फुफकारने" के रूप में वर्णित करता है। प्रसिद्ध भारतीय इतिहासकार इरफान हबीब के शब्दों में उन्होंने दो–राष्ट्र सिद्धांत का अपना संस्करण विकसित किया था जिसमें हिंदुओं और मुसलमानों को दो राष्ट्रों के रूप में हमेशा एक–दूसरे के साथ युद्ध में चित्रित किया गया था।[77] के.एस. लाल पहले भारतीय इतिहासकार थे जिन्होंने मध्यकाल पर सांप्रदायिक इतिहास की किताबें लिखना शुरू किया था। उनकी पहली पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ खिलजी' थी जो 1950 में प्रकाशित हुई थी और दूसरी पुस्तक 'ट्वाइलाइट ऑफ द सल्तनत' 1963 में प्रकाशित हुई थी। उनकी पुस्तक 'ग्रोथ ऑफ मुस्लिम पापुलेशन इन मिडिवल इंडिया' 1973 में प्रकाशित हुई थी जिसमें उन्होंने तर्क दिया था कि 1200 ईस्वी से 1500 ईस्वी के बीच

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

मुस्लिम शासकों द्वारा किए गए हिंदू आबादी के बड़े पैमाने पर नरसंहार के कारण भारतीय आबादी 190 मिलियन से घटकर 120 मिलियन हो गई थी। यह दिलचस्प है कि वह उन जनगणना की शुरुआत के पहले बिना किसी डेटासेट या संदर्भ के ऐसे मात्रात्मक दावे करते है, लेकिन उनका दावा आरएसएस द्वारा एक सुसमाचार सत्य के रूप में लिया जाता है।"[78]

के एस लाल के अलावा, सीता राम गोयल ने 1994 में 'हेरोइक हिन्दू रेजिस्टेंस टू मुस्लिम इन्वैडर्स' 636 ए.डी. टू 1206 ए.डी. नामक पुस्तक लिखी। 1996 में 'द स्टोरी ऑफ इस्लामिक इम्पीरियलिज्म इन इंडिया' और 1998 में हिन्दू टेम्पलसः व्हाट हैपण्ड टू देंमः खंड–1 की रचना की। हिलाल अहमद (2014) ने अपनी पुस्तक 'मुस्लिम पॉलिटिकल डिस्कोर्स इन पोस्टकोलोनियल इंडियाः मॉन्यूमेंट्स, मेमोरी, कॉन्टेस्टेशन' में विस्तार से लिखते हैं कि भारत में इतिहास के सांप्रदायिक संस्करण जो 1850 के बाद लिखे गए थे, उसने दिल्ली में कुतुब मीनार और जामा मस्जिद और आगरा में ताजमहल जैसे ऐतिहासिक स्मारकों को सांप्रदायिक बना दिया है।"[79] हिंदुत्व के समर्थकों का दावा है कि आर्य भारत के मूल स्वदेशी नागरिक थे और वे हिंदू थे और उन्होंने भारत से इसे लेकर दुनिया को सभ्यता दी। इसके लिए वे कोएनराड एल्स्ट की पुस्तक 'अपडेट ऑन द आर्यन इनवेसन डिबेट' का उपयोग करते हैं जो 1999 में प्रकाशित हुई थी। इसी तहर वे डेविड फ्रॉली की पुस्तक 'द मिथ ऑफ आर्यन इनवेसन ऑफ इंडिया' जो 2005 में प्रकाशित हुई थी, का भी उल्लेख करते हैं। इसलिए, वे स्वदेशी लोगों के रूप में द्रविड़ों के किसी भी दावे के खिलाफ हैं। क्योंकि यह भारत के स्वदेशी लोगों के रूप में आर्यों के उनके दावों पर सवाल उठाता है।

इतिहास का सांप्रदायिक हिंदुत्व संस्करण मुस्लिम शासकों को विदेशी, आक्रमणकारियों और बर्बर लोगों के रूप में वर्णित करता है, जिन्होंने भारतीय सभ्यता को नष्ट कर दिया था। भारतीय इतिहास के इस हिंदूकृत संस्करण को 1950 के दशक से आरएसएस आधारित सरस्वती शिशु मंदिरों और विद्या भारती प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों में पढ़ाया जाता रहा है। आरएसएस के स्वामित्व वाले प्रकाशक सरस्वती शिशु मंदिर प्रकाशन उन पुस्तकों को प्रकाशित करता है जहाँ हिंदुओं को छोड़कर भारत में रहने वाले अन्य सभी समुदायों को विदेशी के रूप में चित्रित किया जाता है, विशेष रूप से मुसलमानों को उत्पीड़क और अत्याचारी के रूप में लक्षित

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

किया जाता है। 2000 के दशक की शुरुआत में बीजेपी के सत्ता में आने के साथ ही उन्होंने सरकारी स्कूलों में पढ़ाई जाने वाली भारतीय पाठ्य पुस्तकों में उसी तर्ज पर बदलाव करना शुरू कर दिया। प्रसिद्ध भारतीय इतिहासकार रोमिला थापर के अनुसार, नई पाठ्य पुस्तकों में सबसे महत्त्वपूर्ण चूक प्राचीन काल में गोमांस खाने के उल्लेख को लेकर है, क्योंकि यह स्पष्ट रूप से भाजपा सरकार की "गोमांस प्रतिबंध" की नीतियों के खिलाफ है। जबकि रोमिला थापर का दावा है कि प्राचीन काल में गोमांस खाना वैदिक स्रोतों शतपथ ब्राह्मण 3.4.1.2 और वशिष्ठ धर्मसूत्र 4.8 से सिद्ध होता है, दोनों स्रोतों में मेहमानों को गोमांस परोसने का उल्लेख है।[80]

नई एनसीईआरटी पाठ्यपुस्तकें भी हिंदुत्व विचारधारा और सरकारी योजनाओं के आवश्यक पाठ्यक्रम में प्रवेश करने के समान पैटर्न का पालन करती हैं, जिसे नए संस्करणों में 1,334 परिवर्तनों में देखा जा सकता है, जिनमें से 316 परिवर्तन सामाजिक विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों में किए गए थे।[81] सबसे प्रमुख परिवर्तन प्रधान मंत्री मोदी की अगुवाई में की गई। जो कई नई पहलों को शामिल करता है और जिनमें से कई विवादास्पद भी है। उदाहरण के लिए, कक्षा 10 की अर्थशास्त्र पुस्तक में "मनी एंड क्रेडिट" नामक एक अध्याय की प्रस्तावना में एनडीए–द्वितीय सरकार का "2016 में सभी 500 और 1,000 रुपये के नोटों को बंद करने का विवादास्पद निर्णय" अब इसका प्रतिनिधित्व करता है :

भारत में नवंबर 2016 के दौरान, 500 और 1,000 रुपये के मूल्यवर्ग के करेंसी नोटों को अमान्य घोषित कर दिया गया था। . . . इसे लेनदेन के लिए नकदी की आवश्यकता को कम करने और भ्रष्टाचार को नियंत्रित करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। छात्रों को प्रक्रिया और विमुद्रीकरण के प्रभाव पर बहस करने के लिए कहा जा सकता है। उन्हें उन प्रमुख क्षेत्रों का एक कोलाज बनाने के लिए निर्देशित किया जा सकता है जहाँ लोग डिजिटल और नकद लेनदेन का उपयोग करते हैं जो वैध और कानूनी हैं।[82]

वाशिंगटन पोस्ट का एक लेख जो इंडियन एक्सप्रेस की रिपोर्ट का सार प्रस्तुत करता है, इस बात पर जोर देता है कि कैसे इस पाठ्यपुस्तक की पहल का चित्रण उस अराजकता का उल्लेख नहीं करता है जो भारत के 80 प्रतिशत नकदी को बदलने की घोषणा के बाद हुई, जिसके कारण महीनों तक बैंकों के बाहर लंबी लाइनें लगी रहीं और छोटे व्यवसायों को

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

भारी नुकसान हुआ।[83] जबकि कांग्रेस पार्टी की सरकारों के तहत पिछले प्रशासनों में पाठ्यपुस्तक परिवर्तन एक बहस रही है, चोपड़ा ने वाशिंगटन पोस्ट को बताया कि ये पाठ्यपुस्तकें अभी भी पार्टी की पिछली विफलताओं की आलोचनात्मक प्रस्तुति थीं और केवल राजनीतिक घटनाओं और कानूनों के बारे में बात करती थीं, न कि सरकार द्वारा शुरू किए गए मिशनों के बारे में। हालांकि, सबसे हालिया "पाठ्यपुस्तकों में किये गये परिवर्तन असंतुलित हैं और राजनीति और वर्तमान घटनाओं के बारे में बच्चों की धारणाओं को बहका सकते हैं"।[84] जहाँ 2016 और 2018 की पाठ्यपुस्तकें 2002–2004 की पाठ्यपुस्तकों से भिन्न हैं, उन परिवर्तनों की सीमा में हैं जो इतिहास बनाम वर्तमान नीति पर केंद्रित हैं। किताबों में मोदी और अन्य भाजपा नेताओं के एजेंडे को स्पष्ट रूप से शामिल करना न केवल एक आम राष्ट्रीय पहचान को संश्लेषित करने के बारे में है, बल्कि सामाजिक न्याय के मुद्दों पर जनता को शांत करने के लिए भी है। राजस्थान में "कक्षा 7 की अंग्रेजी पाठ्यपुस्तक में नरेंद्र मोदी के साप्ताहिक रेडियो शो मन की बात को संचार में आधुनिक तकनीक के उपयोग पर एक चर्चा में शामिल किया गया है।" कक्षा 4 के लिए पानी पर एक पर्यावरण विज्ञान अध्याय में एक अंश में लिखा गया है, 'भारत सरकार की नमामि गंगे योजना के अच्छे, स्थायी परिणाम होंगे और गंगा, फिर से स्वच्छ होगी।" इस बीच, स्वच्छ भारत अभियान और बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ, देवनानी ने जिन दो पहलों को पाठ्यपुस्तकों में शामिल करने का अनुरोध किया, "दोनों को कक्षा 1 की हिंदी पाठ्यपुस्तक में शहरी भारत पर एक दृष्टांत में प्रमुखता से चित्रित किया गया है"। 2002–2004 की पाठ्यपुस्तकों के विपरीत, जो मुख्य रूप से अतीत को फिर से लिखने पर केंद्रित थीं, नई पाठ्यपुस्तकें वर्तमान को फिर से लिख रही हैं।[85]

2013 में राजस्थान में वसुंधराराजे सिंधिया के नेतृत्व में भारतीय जनता पार्टी सत्ता में आयी। अलेक्स ट्रोब अपने लेख 'इंडियाज डेंजरस न्यू करिकुलम' में लिखते हैं कि सैफी स्कूल राजस्थान सरकार द्वारा प्रकाशित नई पाठ्यपुस्तकों का उपयोग कर रहा है, जो हिंदू राष्ट्रवादी भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) द्वारा संचालित है, जो भारत की संसद और राज्य विधानसभाओं पर हावी है। नई पाठ्यपुस्तकें भाजपा के राजनीतिक कार्यक्रम और विचारधारा को बढ़ावा देती हैं। वे वैदिक मिथकों की सत्यता के लिए तर्क देते हैं, प्राचीन और मध्यकालीन हिंदू शासकों का महिमामंडन

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

करते हैं, स्वतंत्रता आंदोलन को हिंदू कट्टरवादियों के नेतृत्व में एक हिंसक लड़ाई के रूप में पुनर्गठित करते हैं, राज्य के प्रति वफादारी की मांग करते हैं और भाजपा के प्रधान मंत्री नरेंद्र मोदी की नीतियों की प्रशंसा करती हैं। एक किताब मुस्लिम बादशाहों की एक विविध श्रृंखला द्वारा पांच सदियों से अधिक शासन को एक "संघर्ष की अवधि" तक सीमित कर देती है और इसके कई प्रमुख आंकड़ों को प्रदर्शित करती है।[86] हिंदुस्तान टाइम्स ने रिपोर्ट किया कि राजस्थान की 2016 की पाठ्यपुस्तकों ने गांधी और नेहरू को उनकी ऐतिहासिक समय–सीमा से मिटा दिया है। कक्षा 8 के लिए सामाजिक विज्ञान में यह उल्लेख नहीं है कि भारत का पहला प्रधान मंत्री कौन था। इसमें नाथूराम गोडसे द्वारा महात्मा गांधी की हत्या के बारे में भी कुछ नहीं कहा गया है। कक्षा 10 और 12 की नई पाठ्यपुस्तकों में महात्मा गांधी का संदर्भ है लेकिन नेहरू का कोई उल्लेख नहीं है।[87] वसुंधरा राजे सिंधिया के शासन काल में सरकार ने स्कूली पाठ्यक्रम से अकबर के नाम से 'महान' शब्द हटा दिया था। उन्होंने आठवीं कक्षा की पाठ्यपुस्तकों से भारत के पहले प्रधान मंत्री जवाहरलाल नेहरू के संदर्भ भी हटा दिए थे। इसके अलावा, वसुंधरा राजे सरकार के अंतर्गत शिक्षा विभाग ने जॉन कीट्स, थॉमस हार्डी, विलियम ब्लेक, टीएस एलियट और एडवर्ड लियर की कविताओं को संशोधित कक्षा आठवीं की अंग्रेजी पाठ्यपुस्तकों से हटा दिया। उन्हें ज्यादातर कम–ज्ञात लेखकों द्वारा प्रतिस्थापित किया गया है जिनके कार्यों में एक क्षेत्रीय तड़का है। बलात्कार सहित कई आरोपों का सामना कर रहे विवादास्पद धर्मगुरु आसाराम बापू को तीसरी कक्षा की पाठ्यपुस्तक में 'देश के प्रसिद्ध संतों' में सूचीबद्ध किया गया था। वे बच्चों को यह भी बताने में कामयाब रहे कि कैसे पुरुष महिलाओं से श्रेष्ठ हैं और एक महिला का कर्तव्य है कि वह अपने पुरुष का अनुसरण करे।[88]

इसके बाद दिसंबर 2018 में कांग्रेस सरकार के सत्ता में आने के कुछ दिनों बाद, गोविंद सिंह डोटासरा, जिन्होंने 2019–21 से शिक्षा विभाग संभाला, उन्होंने कहा कि भाजपा के शासनकाल में शिक्षा विभाग "आरएसएस की प्रयोगशाला" बन गया था। फरवरी 2019 में कांग्रेस सरकार ने पाठ्यपुस्तक समीक्षा समितियों का गठन किया और उसी वर्ष बाद में समितियों की सिफारिशों के आधार पर नई पाठ्यपुस्तकें छापी गईं। एक बड़ा परिवर्तन हल्दीघाटी के युद्ध को लेकर था। भाजपा शासन में छपी

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पाठ्यपुस्तक में कहा गया है कि महाराणा प्रताप ने लड़ाई जीती, जबकि नई कक्षा 10 सामाजिक विज्ञान की किताबों में हल्दीघाटी युद्ध प्रताप के युद्ध के मैदान को छोड़ने और उनके घोड़े चेतक के मरने के साथ समाप्त होता है। इसमें यह भी उल्लेख है कि महाराणा प्रताप और अकबर के बीच संघर्ष एक धार्मिक युद्ध नहीं था, बल्कि दो राजनीतिक ताकतों के बीच श्रेष्ठता के लिए संघर्ष था। युद्ध के परिणाम पर मौन अध्याय बाद के वर्षों में अकबर के खिलाफ प्रताप के गुरिल्ला युद्ध का वर्णन करता है। नई कक्षा 12 की इतिहास की पाठ्यपुस्तक में सावरकर के लिए 'वीर' उपसर्ग को हटा दिया और उन्हें 'विनायक दामोदर सावरकर' के रूप में संदर्भित किया। नई पाठ्यपुस्तक में सावरकर की "अंग्रेजों के लिए दया याचिका" की बात की गई है और कैसे कैद से उनकी रिहाई के बाद सावरकर ने भारत को "हिंदू राष्ट्र" के रूप में स्थापित करने की दिशा में काम किया, इसका भी वर्णन किया गया है। कांग्रेस द्वारा किए गए परिवर्तनों के परिणामस्वरूप भाजपा को नाराजगी हुई, जिसने राजीव गांधी स्टडी सर्कल (आरजीएससी) जैसे संगठनों पर कांग्रेस की विचारधारा को आगे बढ़ाने का आरोप लगाया, जिसके अध्यक्ष के रूप में राजस्थान के मुख्यमंत्री अशोक गहलोत हैं। हालांकि, राजीव गांधी स्टडी सर्कल के पदाधिकारियों ने भाजपा के आरोपों का खंडन किया, बदले में आरोप लगाया कि पाठ्यपुस्तकों को बदलने की परंपरा पहले के भाजपा शासन के दौरान शुरू हुई थी। भाजपा ने पहली बार 1993 में शिक्षा से जुड़े मामलों में दखल दिया, जब पार्टी ने राजस्थान में पाठ्यपुस्तकों के पाठ्यक्रम में बदलाव किया, जिसमें आरएसएस की विचारधारा के तत्त्व शामिल थे। बाद की कांग्रेस सरकारों ने केवल इन विकृतियों को सुधारा और पाठ्यक्रम को एनसीईआरटी के अनुरूप बनाया।"[83]

मार्क्सवादी इतिहासकारों ने भारत के इतिहास को गलत लिखा है, ऐसा आक्षेप अक्सर जनमानस में रहता है। पाठ्यपुस्तकों में मार्क्सवादी एजेंडे को पूरी तरह से मिटाने के प्रयास में भाजपा के शासनकाल में लिखित पाठ्यपुस्तकें प्रभावशाली तरीके से छात्रों पर अपनी विचारधाराओं को थोपती हैं। उदाहरण के लिए, राष्ट्र के लिए आत्म–बलिदान सभी पाठ्यपुस्तकों में निहित है। राजस्थान में 2016 में पेश की गई कक्षा 3 की हिंदी पाठ्यपुस्तक में कहा गया है, "– सात वर्षीय मैना को अंग्रेजों ने जला दिया था क्योंकि वह देश के लिए स्वतंत्रता चाहती थी। पाठ्यपुस्तक

CC0: In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

लिखती है कि वह 'हंसते हुए' अपनी मृत्यु के लिए गई थी और अध्याय के अंत में बच्चों से पूछा जाता है कि यदि वे मैना की जगह होते और उन्हें आग में डुबकी लगाने के लिए कहा जाता तो वे क्या करते"। बच्चों के लिए यह विचलित करने वाला संदेश हिंदू राष्ट्रवाद के मिशन के प्रति भारतीय नागरिकों से हिंदुत्व नेताओं की भक्ति का एक उदाहरण प्रस्तुत करता है।[90] कक्षा 12 की गुजरात की पाठ्यपुस्तको में लोकतंत्र की सीमाओं को विस्तार से बताने के बाद "वर्साय की संधि" की आश्चर्यजनक रूप से लगातार आलोचना और मुसोलिनी की सफलताओं की एक गणना के साथ शुरू होती हैं और फिर एडॉल्फ हिटलर की लम्बी प्रशंसा करना शुरू कर देती हैं। जहाँ लिखा गया है कि 'हिटलर ने नाजी पार्टी की मदद से एक मजबूत जर्मन संगठन बनाया और इसके लिए बहुत सम्मान प्राप्त किया। जर्मन नागरिकों का पक्ष लेकर और यहूदियों का विरोध करके और अपनी नई आर्थिक नीतियों से उन्होंने जर्मनी को एक समृद्ध देश बना दिया। उसने कड़े कदम उठाकर बहुत ही कम समय में जर्मनी के लोगों के जीवन को बदल दिया। उन्होंने देश को मुश्किलों से बचाया और कई उपलब्धियाँ हासिल कीं'।[91] हिटलर और नाजीवाद का यह समर्थन हिंदुत्व के दार्शनिक सावरकर के मूल लेखन में पाया जा सकता है। नाजी जर्मनी के समर्थन के माध्यम से ये पाठ्यपुस्तकें एक प्रकार से हिंदुत्व के संस्थापकों में से एक की विचारधारा का संदेश फैला रही हैं।[92]

भारत के संदर्भ में वणिक बताते हैं कि 'हिंदू उग्रवाद' 1920 के दशक से राष्ट्रीय आंदोलनों के भीतर अस्तित्व में है। हालाँकि, आजकल इन दक्षिणपंथी विचारों की व्यापक सार्वजनिक ग्रहणशीलता है[93], जो इस बात को प्रकट करती हैं कि बच्चे स्कूल में क्या सीख रहे हैं। दक्षिणपंथी सत्तावादी लोकलुभावनवाद राज्य–समाज संबंधों के पुनर्गठन का एक रूप है जहाँ उद्देश्य शक्तिशाली होना और नियंत्रित करना है। समकालीन भारत में यह 'बाजार उदारवाद' और 'हिन्दुत्ववाद' और स्कूली पाठ्यपुस्तकों के माध्यम से शक्तिशाली नियंत्रण वाली सरकार का मामला है।[94] पाठ्यपुस्तकों में मोदी और अन्य भाजपा नेताओं के एजेंडे को स्पष्ट रूप से शामिल करना न केवल एक आम राष्ट्रीय पहचान को संश्लेषित करना है, बल्कि सामाजिक न्याय के मुद्दों पर जनता को शांत करना भी है।[95] उनके तीन मुख्य उद्देश्य हैं। सबसे पहले, हिंदू हस्तियों और देवताओं की ऐतिहासिक और पौराणिक

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

उपलब्धि के बीच संबंध स्थापित करना जो आज भारत के राष्ट्र–राज्य और अतीत की हिंदू राजनीति के बीच आवश्यक संबंधों को उजागर करता है। दूसरा, यह विमर्श हिंदुओं को भारत में हमेशा के लिए प्रभावी होने के रूप में वर्गीकृत करने का प्रयास करता है और एक हिंदू अतीत की समकालीन दृष्टि को लागू करता है।[96] तीसरा, आर्थिक विकास के विमर्श को हिंदू अनुभवों के साथ एकाधिकार करना और मुसलमानों के महत्त्व को प्रभावी ढंग से नकार देता है। यह हिंदुत्व विमर्श को बड़े संदर्भ में पोषित करना है।[97]

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) द्वारा शासित दक्षिणी कर्नाटक राज्य में हाल के दिनों में स्कूली पाठ्यपुस्तकों के संशोधन को लेकर एक विवाद छिड़ गया है, जिसमें विरोधियों ने हिंदू राष्ट्रवादी एजेंडे को बढ़ावा देने की कोशिश करने के लिए सरकार की आलोचना की है।[98] हरियाणा में मनोहर लाल खट्टर के नेतृत्व वाली भाजपा सरकार ने राज्य के स्कूलों में कक्षा 6 से 10 के लिए पाठ्यपुस्तकों को बदल दिया है। इसकी एक सूची हरियाणा बोर्ड ऑफ स्कूल एजुकेशन की आधिकारिक वेबसाइट पर डाल दी गई है। सबसे प्रमुख परिवर्तनों में विभाजन से पहले कांग्रेस की भूमिका पर एक टिप्पणी है–पार्टी नेतृत्व में "सत्ता के लिए लालच" को विभाजन के प्रमुख कारणों में से एक के रूप में माना गया है, जबकि दूसरा इसकी तुष्टिकरण की राजनीति पर निर्भर करता है। हरियाणा स्कूल शिक्षा बोर्ड द्वारा पाठ्यक्रम में किए गए अन्य परिवर्तनों में मुगल वंश की विषयवस्तु में कमी, वीर सावरकर और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर अध्यायों की शुरूआत शामिल है। साथ ही 'सिंधु घाटी सभ्यता' शब्द को 'सरस्वती सिंधु सभ्यता' से प्रतिस्थापित किया गया है और 1857 के विद्रोह को भारतीय स्वतंत्रता के लिए पहला संघर्ष बताते हुए यह भी कहा गया है कि इसकी शुरूआत मेरठ (यूपी) में नहीं बल्कि अंबाला (हरियाणा) में हुई थी। जबकि कांग्रेस की भूमिका और उसके नेताओं की मुस्लिम लीग की एक अलग राष्ट्र की मांग के विरोध में खड़े होने में असमर्थता को कक्षा 9 की इतिहास की पाठ्यपुस्तक में जगह मिलती है। आरएसएस और सावरकर पर अध्याय 10 वीं कक्षा के इतिहास की पाठ्यपुस्तक में शामिल किए गए हैं। पहले अध्याय पृष्ठ 12 में एक विशेष खंड आरएसएस और इसके संस्थापक हेडगेवार के "राष्ट्रवाद और सामाजिक चेतना का जागरण" को समर्पित किया गया है। स्वतंत्रता के

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

लिए भारतीय संघर्ष की भावना को बढ़ाने में एक क्रांतिकारी, इतिहासकार और समाज सुधारक के रूप में सावरकर की भूमिका का विस्तृत उल्लेख पृष्ठ 54 और 55 पर मिलता है। अध्याय में सावरकर के स्वतंत्रता संग्राम के उन कुछ नेताओं में से एक होने की भी बात की गई है जिन्हें सेलुलर जेल (अंडमान) में कैद किया गया था। अध्याय इस सुझाव के साथ समाप्त होता है कि 'भारत की सेल्यूलर जेल तथा साधरण जेलों की सजा में अंतर जानने का प्रयास करे।'[99]

कक्षा 9 की पाठ्यपुस्तक के अध्याय 8 में पृष्ठ 108 पर विभाजन के नौ कारणों की सूची है। इनमें से दो का फोकस कांग्रेस पर है – 1905 में बंगाल के विभाजन के बाद इसकी "तुष्टिकरण की राजनीति" और विभाजन से पहले 1940 के दशक में कांग्रेस नेताओं की शिथिलता। उसी अध्याय के पृष्ठ 109 पर धारा 9 कांग्रेस नेतृत्व की शिथिलता और उनके "सत्ता के लालच" का उल्लेख करती है, जिसने उन्हें "मुस्लिम लीग की एक अलग राष्ट्र की मांग के खिलाफ शक्तिहीन" बना दिया। हालाँकि, बोर्ड का कहना है कि संशोधन राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) 2020 के अनुरूप किए गए हैं, जो भारतीय ज्ञान प्रणाली पर जोर देता है। रामायण और वेद जैसे प्राचीन ग्रंथों के अध्याय, सरस्वती सिंधु सभ्यता, और मुगलों के खिलाफ भारतीय राजकुमारों द्वारा किए गए प्रतिरोध को कक्षा 6 से 8 की पाठ्यपुस्तकों में शामिल किया गया है।[100]

कक्षा 9 की पाठ्यपुस्तक के 'भारत का विभाजन, रियासतों का एकीकरण एवं विस्थापितों का पुनर्वास' नामक अध्याय के एक पैराग्राफ में लिखा गया है कि विभाजन के प्रमुख कारणों में कांग्रेसी नेतृत्व की थकान और उसकी सत्ता लोलुपता को भी उत्तरदायी माना जाता है। लगातार संघर्ष से कांग्रेसी नेतृत्व थक चुका था। वह अब और संघर्ष करने के लिए तैयार नहीं था। कांग्रेस के कुछ नेता यथाशीघ्र स्वतंत्रता प्राप्त कर सत्ता सुख भोगना चाहते थे। गाँधी जी ने जब विभाजन का विरोध् किया तो कांग्रेस के नेतृत्व ने कोई उत्साह नहीं दिखाया, जिस वजह से गाँधी जी ने भी विभाजन को स्वीकार कर लिया। यह खंड एक खुले प्रश्न के साथ समाप्त होता है : "यदि विभाजन शांति लाने के लिए किया गया था, तो हमने इसे अब तक हासिल क्यों नहीं किया?"[101]

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

कक्षा 9 की पाठ्यपुस्तक के अध्याय–1 में आरएसएस के संस्थापक हेडगेवार और 1922 में शांति स्थापना में हिंदुत्ववादी नेताओं की भूमिका पर एक अंश है। इसमें लिखा गया है कि '1922 ई. में भारत में कई स्थानों पर दंगे प्रारंभ हो गए। ऐसे में प्रमुख हिंदू महासभाई नेता डॉ. बालकृष्ण शिवराम मुंजे, डॉ. केशवराव हेडगेवार आदि इन स्थानों पर हिंदुओं की सहायता के लिए गए। ऐसी घटनाओं से विचलित होकर नागपुर में डॉ. मुंजे ने कुछ प्रसिद्ध हिंदू नेताओं की बैठक बुलाई जिनमें डॉक्टर हेडगेवार एवं डॉक्टर परांजपे भी थे। इस बैठक में उन्होंने एक हिंदू संगठन बनाने का निर्णय लिया, जिसका उद्देश्य था हिंदुस्तान को सशक्त राष्ट्र बनाना। इस संगठन को खड़ा करने की जिम्मेदारी डॉक्टर मुंजे ने डॉक्टर केशवराव बलीराम हेडगेवार को दी।'[102]

पिछले साल जुलाई में योगी आदित्यनाथ के नेतृत्व वाली उत्तर प्रदेश सरकार ने सरकारी स्कूलों के कक्षा 10 और 12 के पाठ्यक्रम में बड़े बदलाव किए हैं। उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा परिषद् ने 2021–22 शैक्षणिक सत्र से नोबेल पुरस्कार विजेता रवींद्रनाथ टैगोर और पूर्व राष्ट्रपति डॉ एस राधाकृष्णन के कार्यों को हटा दिया। टैगोर की लघु कहानी 'द होमकमिंग' और डॉ राधाकृष्णन के निबंध 'द विमेंस एजुकेशन' को कक्षा 12 के पाठ्यक्रम से हटा दिया गया था। मुल्क राज आनंद की द लॉस्ट चाइल्ड और आर.के. नारायण को भी बाहर कर दिया गया। बोर्ड के अधिकारियों ने उस समय कहा था कि परिवर्तन अंग्रेजी के लिए नए एनसीईआरटी पाठ्यक्रम के कार्यान्वयन के अनुरूप हैं। पाठ्यक्रम में बदलाव सिर्फ बीजेपी शासित राज्यों तक सीमित नहीं है। 2019 में कांग्रेस के राजस्थान के मुख्यमंत्री अशोक गहलोत के बनने के कुछ महीने बाद ही राज्य सरकार ने मोदी सरकार की नीतियों के बारे में चर्चा करने वाली चार पाठ्यपुस्तकों को बंद कर दिया, जो कि उनकी पूर्ववर्ती वसुंधरा राजे के समय राज्य बोर्ड के स्कूलों में पढ़ाई जा रही थीं।[103]

'द डिप्लोमेट' में कविता चौधरी द्वारा लिखे एक लेख 'स्कूल सोशल साइंस टेक्स्टबुक रिवीजन्स इन इंडिया किक अप कंट्रोवर्सी' के अनुसार, केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (सीबीएसई) ने स्कूली सामाजिक विज्ञान और इतिहास की पाठ्यपुस्तकों से चयनित विषयों को हटा दिया है। कक्षा 6 से 12 तक की पाठ्यपुस्तकों से जिन विषयों को हटा दिया गया

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

उनमें मुगल दरबार का इतिहास, गुजरात में सांप्रदायिक दंगे, आपातकाल, दलित लेखक, नक्सली (माओवादी) आंदोलन और समानता की लड़ाई शामिल हैं। जबकि सीबीएसई ने इन विषयों के बहिष्कार को "पाठ्यक्रम युक्तिकरण" अभ्यास के रूप में वर्णित किया। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (एनसीईआरटी) ने कहा कि हटाई गई सामग्री "अतिव्यापी" और "अप्रासंगिक" थी। मुगलों (एक मुस्लिम राजवंश जिसने मध्ययुगीन काल में शासन किया) के योगदान पर एक पूरा अध्याय और उनकी पांडुलिपियों को कक्षा 12 की इतिहास की पाठ्यपुस्तक से हटा दिया गया है। भाजपा और उसके हिंदुत्व के समर्थकों ने अक्सर यह तर्क दिया है कि वर्तमान में उपयोग में आने वाले एनसीईआरटी पाठ्यपुस्तकें मुगल शासन को अनुचित महत्त्व देते हैं। बदले में हम अपना ध्यान प्राचीन भारत की उपलब्धियों पर केंद्रित करना चाहते हैं।[104]

कुछ विलोपन भाजपा नेताओं के रिकॉर्ड को स्वच्छ करने की ओर इशारा करते हैं। 2002 के दंगों के दौरान प्रधान मंत्री नरेंद्र मोदी गुजरात के मुख्यमंत्री थे। इस विषय को हटाने का उद्देश्य पाठ्यपुस्तकों से इस असुविधाजनक तथ्य को मिटाना है। इसके अलावा, कांग्रेस की पूर्व प्रधान मंत्री इंदिरा गांधी द्वारा लगाए गए आपातकाल और 1975–1977 की अवधि के दौरान की गई ज्यादतियों की आलोचना को राजनीति विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों से हटा दिया गया है। यह विलोपन स्कूल पाठ्यक्रम से सत्तावाद की किसी भी महत्त्वपूर्ण समझ को हटाने का एक प्रयास प्रतीत होता है। पाठ्यपुस्तकों से सामाजिक असमानता और जाति–आधारित भेदभाव की चर्चाओं को हटाना हिंदुत्व के विचारकों की उस परेशानी को दर्शाता है, जिसमें हिंदू समाज में जाति–आधारित उत्पीड़न जैसी समस्याओं पर चर्चा की जाती है। गौरतलब है कि समकालीन भारत की पाठ्यपुस्तको से अल्पसंख्यक और हाशिए के समूहों द्वारा असमानता और समानता की लड़ाई पर अध्याय को हटा दिया गया है। भाजपा ने हमेशा आरोप लगाया है कि मार्क्सवादी इतिहासकारों द्वारा लिखा गया "विकृत" इतिहास अब तक स्कूलों में पढ़ाया जाता रहा है और इस पाठ्यक्रम ने हिंदू राजाओं के इतिहास और उनके योगदान की अनदेखी की है। नतीजतन, भाजपा जब 1998 में पहली बार सत्ता में आई, तो इसने इतिहास की पाठ्यपुस्तकों को फिर से लिखने के प्रयासों को गति दी। इतिहास को "भगवा रंग" देने के

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

प्रयास के लिए अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व वाली सरकार की आलोचना की गई थी (भगवा रंग अक्सर हिंदुत्व से जुड़ा होता है)। बाद में 2004 में कांग्रेस के नेतृत्व वाली गठबंधन सरकार के सत्ता में आने पर इसे उलट दिया गया।[105]

2014 के बाद से भाजपा के सत्ता में आने के साथ "ऐतिहासिक गलतियों" को ठीक करने के प्रयासों में तेजी आई है। शिक्षा पर एक संसदीय समिति को "पाठ्यपुस्तकों से हमारे राष्ट्रीय नायकों के बारे में अनैतिहासिक तथ्यों और विकृतियों के संदर्भों को हटाने, भारतीय इतिहास की सभी अवधियों के समान या आनुपातिक संदर्भ सुनिश्चित करने और महान ऐतिहासिक महिला नायकों की भूमिका को उजागर करने" के लिए अनिवार्य किया गया था। इस आरोप पर आपत्ति जताते हुए कि एनसीईआरटी की किताबें वर्तमान में "अनैतिहासिक तथ्यों और विकृतियों" से भरी हुई हैं, पिछले साल 100 से अधिक प्रख्यात इतिहासकारों ने संसदीय समिति को लिखा था कि पाठ्यपुस्तक संशोधन का अभ्यास किसी विशेष विचारधारा को खुश करने के इरादे से नहीं किया जा सकता है। इन आपत्तियों के बावजूद एनसीईआरटी अगले साल तक तैयार होने वाली पाठ्यपुस्तकों को संशोधित करने की प्रक्रिया में है। नई पाठ्यपुस्तकें राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के साथ संरेखित करने के लिए लिखी जाएंगी, जो "भारतीय लोकाचार में निहित शिक्षा प्रणाली" के बारे में बात करती है। आलोचकों का आरोप है कि पाठ्यपुस्तक में संशोधन राजनीर्ति से प्रेरित है, सरकार इसे पाठ्यक्रम को अद्यतन रखने के लिए एक नियमित अभ्यास के रूप में वर्णित करती है। पाठ्यपुस्तकों के संशोधन के निहितार्थ दूरगामी होंगे। भारत की विविधता एक "ऐतिहासिक तथ्य" है, हबीब लिखते हैं, "विविध नस्लों, धर्मों, संस्कृतियों की ओर इशारा करते हुए, जो सदियों से यहाँ उतरे और एक भारतीय पहचान में विसर्जित और आत्मसात हो गए।"[106]

नरेंद्र मोदी के सत्ता में आने के कुछ समय बाद अगस्त 2014 में आरएसएस ने शिक्षा प्रणाली का "भारतीयकरण" करने के लिए एक समिति, भारतीय शिक्षा नीति आयोग का गठन किया। इसकी अध्यक्षता दीनानाथ बत्रा ने की थी, जिन्होंने हिंदू राष्ट्रवाद के सिद्धांतों के अनुसार भारतीय इतिहास को फिर से लिखने में विशेषज्ञता हासिल की थी। संघ परिवार की विद्या भारती के लंबे समय तक महासचिव रहे बत्रा ने अपनी अधिकांश ऊर्जा

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

धर्मनिरपेक्ष लेखकों द्वारा लिखित इतिहास की पाठ्यपुस्तकों में कथित त्रुटियों का मुकाबला करने के लिए समर्पित की। अपनी 2001 में प्रकाशित पुस्तक'द एनिमीज ऑफ इंडियनाइजेशनः द चिल्ड्रन ऑफ मार्क्स, मैकाले एंड मदरसा' में उन्होंने 41 प्रमुख दोषों को सूचीबद्ध किया जो हिंदू राष्ट्रवादियो के ऐतिहासिक ट्रॉपिज्म को दर्शाते हैं।[107]

दूसरे बिंदु पर विशेष रूप से प्रमुख हिंदू राष्ट्रवादी इतिहासकार वाई सुदर्शन राव द्वारा जोर दिया गया था जिन्हें 2014 की गर्मियों में नरेंद्र मोदी सरकार द्वारा भारतीय ऐतिहासिक अनुसंधान परिषद का प्रमुख नियुक्त किया गया था। राव इतिहास और पौराणिक कथाओं को एक ही चीज के रूप में देखते हैं और मानते हैं कि ऐतिहासिक अनुसंधान को उन स्थानों की पहचान करने पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए जहाँ महाकाव्यों में वर्णित घटनाएं हुई थीं। इतिहास और पौराणिक कथाओं का यह मिश्रण 2014 से आम हो गया है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (एनसीईआरटी) द्वारा तैयार की गई पाठ्यपुस्तकें जिनका उपयोग केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (सीबीएसई) से संबद्ध स्कूलों में किया जा सकता है, को बड़े पैमाने पर फिर से लिखा गया है। द इंडियन एक्सप्रेस के अनुसार 2014 और 2018 के दौरान 2005 और 2009 के बीच एनसीईआरटी द्वारा लिखी गई 182 पाठ्यपुस्तकों में 1,334 परिवर्तन किए गए थे। हालांकि, जिस पैमाने पर हिंदू राष्ट्रवादी इतिहास को फिर से लिख रहे हैं, उसका अंदाजा राज्य सरकार के स्तर पर ही लगाया जा सकता है। राजस्थान को ही लें, जहाँ इतिहास के पाठ्यक्रम में संशोधन और आख्यानों में बदलाव सरकार के उच्चतम स्तरों पर नीति का एक अभिन्न अंग था। वास्तव में जब भाजपा सत्ता में थी, शिक्षा मंत्री वासुदेव देवनानी इस बात पर काफी स्पष्ट थे कि वे कैसे चाहते हैं कि इतिहास की पाठ्यपुस्तकों को फिर से लिखा जाए। उनके लिए शिक्षा का जोर राष्ट्रवाद को बढ़ावा देने पर होना चाहिए और उन्होंने जोर देकर कहा कि पाठ्यपुस्तकें "अकबर की महानता पर अध्यायों को हटा देंगी और महाराणा प्रताप की वीरता को शामिल करेंगी"। इससे राष्ट्र के इतिहास के क्षेत्रीयकरण की प्रक्रिया शुरू हुई, जिसमें प्रताप मध्यकालीन भारत के केंद्रीय नायक बन गए। देवनानी एक कदम आगे बढ़ गए जब उन्होंने पाठ्यपुस्तकों से हल्दीघाटी की लड़ाई के परिणाम को बदल दिया, जो प्रताप और अकबर के बीच लड़ी गई थी। इसके अलावा इन

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पाठ्यपुस्तकों ने स्वतंत्रता संग्राम से जुड़े व्यक्तियों की प्राथमिकता पर दोबारा गौर किया। उदाहरण के लिए राष्ट्र के पहले प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू को कक्षा 8 की पाठ्यपुस्तक से हटा दिया गया है, जबकि बी आर अम्बेडकर को जाति के खिलाफ अपनी लड़ाई को स्वच्छ बनाने के लिए एक 'हिंदू समाज सुधारक' के रूप में वर्गीकृत किया गया है। वास्तव में पाठ्यपुस्तकों का तर्क है कि अम्बेडकर के प्रयास दयानंद सरस्वती, महात्मा गांधी और आरएसएस के संस्थापक हेडगेवार के समान थे। अम्बेडकर के अन्य मौलिक कार्यक्रम और योगदान, जैसे महाड सत्याग्रह या बौद्ध धर्म में उनका धर्मांतरण पूरी तरह से छोड़े गए हैं।[108]

अंत में सबसे प्रसिद्ध "स्वतंत्रता सेनानी" हिंदुत्व विचारधारा के संस्थापक विनायक दामोदर सावरकर हैं। वह कक्षा 8 से 12 तक की इतिहास की हर पाठ्यपुस्तक में एक ऐसे व्यक्ति के रूप में अंकित हैं, जिसका स्वतंत्रता के लिए योगदान शब्दों में वर्णित नहीं किया जा सकता है। उन्हें "महान देशभक्त, महान क्रांतिकारी और महान संगठनकर्ता" के रूप में वर्णित करके देवता की स्थिति का उदाहरण दिया गया है। इस प्रकार "महान" शब्द का प्रयोग एक बार फिर भाजपा की पाठ्यपुस्तकों में कुछ पात्रों का एकाधिकार है। इस प्रकार भाजपा के लिए इतिहास के शिक्षण को स्कूली छात्रों के बीच राष्ट्रवाद की एक विशेष भावना को बढ़ावा देने के लिए कुछ समुदायों और व्यक्तियों की प्राथमिकता से जोड़ा जाता है। जबकि दीनानाथ बत्रा को अभी तक राष्ट्रीय स्तर पर अपनी महत्वाकांक्षाओं का एहसास नहीं हुआ है, राज्यों में पार्टी भारतीय इतिहास के अपने संस्करण को अगली पीढ़ी के शिक्षार्थियों तक पहुंचाने में सबसे प्रभावी रही है।[109]

उपसंहार

हॉब्सबाम लिखते हैं कि "इतिहास प्रेरणा और विचारधारा के रूप में एक आत्म–औचित्यपूर्ण मिथक बनने की एक अंतर्निहित प्रवृत्ति है। इससे ज्यादा खतरनाक आंखों पर पट्टी कुछ भी नहीं है, जैसा कि आधुनिक राष्ट्रों का इतिहास और राष्ट्रवाद प्रदर्शित करता है।[110] पाकिस्तान ने गैर–सांप्रदायिक और समन्वयवादी अकबर को अपने रूढ़िवादी और सांप्रदायिक पोते, औरंगजेब की तुलना में एक विवादास्पद व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत किया। धार्मिक दर्शन के साथ प्रयोग और दीन–ए–इलाही[111] की शुरूआत के कारण अकबर को एक विशेष अर्थ से विभाजनकारी व्यक्ति माना गया है।

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

जहाँ अकबर का उल्लेख किया गया है उसकी कमजोरियों को आम तौर पर उजागर किया जाता है। दूसरी ओर, औरंगजेब को अद्वितीय सम्मान का एक स्तर प्राप्त होता है, जिसे इस्लाम के सच्चे अनुयायी के रूप में सम्मानित किया जाता है जिसने जजिया (गैर–मुसलमानों पर कर) और संगीत पर प्रतिबंध लगाकर अपने धर्म को आगे बढ़ाया।[112]

दूसरी तरफ, भारतीय पाठ्यपुस्तकें औरंगजेब को विनाश के ध्वजवाहक के रूप में चित्रित करती हैं। वर्षों से भारत में पाठ्यपुस्तक के लेखकों ने औरंगजेब को एक सुविधाजनक खलनायक के रूप में चित्रित करने की कोशिश की है, लगभग एक व्यंग्यवादी कट्टरपंथी के रूप में जो हिंदू दमन में लिप्त है, जो अक्सर मुस्लिम विरोधी भावनाओं को हिन्दुओं में बनाए रखता है।[113] दूसरी ओर, धर्मनिरपेक्ष अकबर को हमेशा भारतीय पाठ्यपुस्तकों में एक उदार और सहिष्णु शासक ''अच्छे मुस्लिम'' के रूप में देखा जाता था। हालाँकि, वर्तमान भारत सरकार जो शुरुआत से ही उपमहाद्वीप के इतिहास का भगवाकरण करने पर आमादा है, यहाँ तक कि अकबर को भी बदनाम किया गया है, मणिमुग्ध शर्मा लिखते हैं कि अब सभी सम्राट अकबर से भी प्यार नहीं करते हैं।[114] अब स्कूल की पाठ्यपुस्तकें सामाजिक आदर्शों, विश्वासों और मूल्यों की औपचारिक अभिव्यक्तियों का प्रतीक न होकर एक सांस्कृतिक विचारधारा का दूसरे पर प्रभुत्व स्थापित करने और उसे वैधता प्रदान करने का साधन बन गई हैं।

निस्संदेह यह कहा जा सकता है कि चेतना और भिन्नता का विरोध कई कारकों, राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक द्वारा आकार लेता है। यह भी उतना ही स्पष्ट है कि ऐसी चेतना के निर्माण में लेखन की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। यहाँ 'लेखन' से तात्पर्य केवल उन इतिहासों से नहीं है जो उपमहाद्वीप के लिए लिखे गए थे, बल्कि समाचार पत्रों के लेख, कथा, कविता और राष्ट्रीय आंदोलन के कई नेताओं के प्रकाशित भाषणों और लेखों से भी हैं। यह याद रखना महत्त्वपूर्ण है कि राष्ट्रीय आंदोलन के कई नेताओं ने इतिहास भी लिखा जैसे– न्यायमूर्ति महादेव गोविंद रानाडे की 'द राइज ऑफ मराठा पॉवर' और जवाहरलाल नेहरू की डिस्कवरी ऑफ इंडिया। ये इतिहास किसी भी मायने में 'सांप्रदायिक' नहीं थे, क्योंकि इन लेखकों ने 'वस्तुनिष्ठ' इतिहास लिखने का एक सचेत प्रयास किया था। इस बात पर जोर दिया जाना चाहिए कि भारत में राष्ट्रवाद, राष्ट्रीय

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

आंदोलन, एक 'राष्ट्रीय' चेतना का निर्माण और लेखन प्रायः एक साथ होने वाली गतिविधियाँ थीं।"[115]

हालांकि भारत और पाकिस्तान ने आजादी के बाद से अलग–अलग रास्तों का अनुसरण किया है। भारत एक लोकतांत्रिक देश होने के नाते एक पृथक् राह पर चला है। जबकि पाकिस्तान को अपने छोटे इतिहास में दशकों के सैन्य शासन से गुजरना पड़ा है। देखने लायक बात यह है कि दोनों देशों की शिक्षा तेजी से सांप्रदायिक होती जा रही है, दोनों में समानताएँ काफी आश्चर्यजनक हैं। भाजपा की पाठ्यपुस्तकों का उद्देश्य ऐसे छात्रों को तैयार करना है जो भाजपा के राजनीतिक एजेंडे के अनुरूप हों, और इस प्रकार वर्ग, लिंग और धार्मिक मतभेदों को कायम रखते हों। वे विवादित राजनीतिक पहलों के बारे में लिखकर भी जनता को शांत कर रहे हैं जैसे कि वे तटस्थ तथ्य हैं। लेकिन अधिक आलोचनात्मक सोच वाली पाठ्यपुस्तकों को हटाने का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू उसके पीछे का तर्क है : एक समाज–विरोधी सुधार और प्रगतिशील–विरोधी दर्शन। अपने मार्क्सवाद विरोध के माध्यम से और साथ ही हिन्दुत्व समर्थक विचारधारा होने के कारण छात्रों की एक ऐसी पीढ़ी का निर्माण किया जा रहा है जो अधिक कट्टर और साथ ही अधिक आज्ञाकारी आबादी बनने की दिशा में पीछे की ओर बढ़ रहे हैं। ये बच्चे न केवल भविष्य का सामना करने के लिए अयोग्य होने जा रहे हैं, बल्कि जानबूझकर इससे मुंह मोड़ रहे हैं ताकि केवल अतीत का अनुकरण करने पर ध्यान केंद्रित किया जा सके।

पाकिस्तान और भारत दोनों ने स्पष्ट रूप से विविध संदर्भों में अपने इतिहास की कल्पना करने का मार्ग चुना है। विशेष रूप से 'इस्लामी दुनिया' के संदर्भ में पाकिस्तान की कल्पना करना पाकिस्तानी इतिहास के लिए बड़े समय की अनदेखी करना संभव बनाता है जबकि उसका अतीत अटूट रूप से भारत के साथ जुड़ा हुआ है। इसी तरह भारत की सीमाओं के प्राकृतिककरण के बिना यह संभव नहीं होगा कि वे पाकिस्तान के निर्माण को एक जैविक इकाई के दुखद विभाजन के रूप में न माने। दोनों ही देशों के राष्ट्रवादी बुद्धिजीवी वास्तव में भारत और पाकिस्तान के छात्रों को यह विश्वास करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं कि वे अलग–अलग दुनिया से संबंधित हैं। यह एक विडम्बना से कम नहीं कि लाहौर और अमृतसर में एक–दूसरे से केवल पचास मील की दूरी पर रहने वाले खुद को न केवल

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

अलग–अलग अतीत के उत्तराधिकारी के रूप में बल्कि अलग–अलग दुनिया में रहने वाले के रूप में अपनी पहचान करते हैं।[116]

भारतीय जनता पार्टी (बीजेपी) की शिक्षा नीति ने व्यापक राष्ट्रव्यापी नीतिगत बदलाव किए हैं जो नागरिकता की धारणाओं को भी गम्भीरता से प्रभावित करते हैं। ये राजनीतिक उपाय भारतीय संविधान की धर्मनिरपेक्ष नींव का उल्लंघन है और शिक्षा के माध्यम से नागरिकता को हथियार बनाने का एक साधन है।[117] राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में धर्मनिरपेक्ष शब्द का एक बार भी उल्लेख नहीं है।[118] अतः यह सवाल उठता है कि समकालीन भारत में नागरिकता और शिक्षा के विचार के लिए इसका क्या अर्थ हो सकता है।[119]

ग्राम्शी के लिए शिक्षा सबाल्टर्न सामाजिक समूहों से बुद्धिजीवियों को गढ़ने का साधन है जो आलोचनात्मक सोच के माध्यम से प्रचलित सामाजिक व्यवस्था को बदलने में सक्षम होंगे। भारत की शिक्षा की वर्तमान प्रक्रिया में शिक्षार्थी राष्ट्र–विरोधी होने के डर से अमूर्त धारणाओं की स्पष्ट रूप से समीक्षा करने की प्रक्रिया को दबा देते हैं। यह तब अनिश्चित हो जाता है जब अमूर्त धारणाएँ शिक्षार्थी की चेतना के लिए तथ्यात्मक हो जाती हैं और बाद में पारंपरिक सामान्य ज्ञान का हिस्सा बन जाती हैं।[120] ग्राम्शी के विचारों को ध्यान में रखते हुए वर्तमान भाजपा सरकार स्कूली पाठ्यपुस्तकों में नागरिकता के विमर्श को फिर से संदर्भ देने के लिए राजनीतिक संचार को माध्यम के रूप में उपयोग कर रही है। आज भारत में नागरिकता के विमर्श से संबंधित प्रमुख विषय मुस्लिम विरोधी भावना है। अपनी वाम–विरोधी ('समर्थक सत्तावादी' होने की हद तक) विचारधारा के माध्यम से हिंदुत्व के नेता छात्रों की एक ऐसी पीढ़ी पैदा कर रहे हैं जो अधिक कट्टर और साथ ही अधिक विनम्र आबादी बनने की ओर पीछे की ओर बढ़ रही है।[121]

भारत के अतीत के प्रतिनिधित्व पर बहस में इतिहास का राजनीतिकरण और शिक्षाविदों (पाठ्यपुस्तकों के लेखकों सहित) की भागीदारी भारतीय राष्ट्र की अलग–अलग कल्पनाओं और एक केंद्रीकृत राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की प्रकृति में निहित पहचान निर्माण से जुड़ी व्यापक चिंताओं के बीच तनाव को दर्शाती है। जबकि राजनीति की गतिशीलता हमेशा अपनी लंबी उम्र सुनिश्चित करने के लिए ऐतिहासिक यादों को पकड़ने की कोशिश करती है। यह शिक्षाविदों पर निर्भर है कि वे सभी प्रकार

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

की राजनीतिक व्याख्याओं और अन्वेषणों से ज्ञान के अनुशासनों को दूर रखें। भारतीय राज्य के लिए सबसे बड़ी चुनौती तब कई "कल्पित" पहचानों को विभाजित करना और एक समावेशी पहचान बनाना है : एक भारतीय होने की। हालांकि, सामूहिक भारतीय स्मृति के कई पाठ तब तक मौजूद रहेंगे, जब तक कि "एकवचन" अतीत की व्याख्या में साक्ष्यों के "भिन्न" उपयोग होते रहेंगे।[122]

इतिहास के सांप्रदायिक संस्करण पाकिस्तान और भारत दोनों में विभाजन के बाद से किसी न किसी रूप में मौजूद रहे हैं। इसके अलावा हमेशा ऐसे धार्मिक संस्थान क्रियाशील रहे हैं जो दोनों देशों में इतिहास के सांप्रदायिक संस्करण को पढ़ाते हैं; जैसे पाकिस्तान में अधिकांश धार्मिक मदरसे और भारत में आरएसएस के स्वामित्व वाले स्कूल और मंदिर। हम यह भी देख सकते हैं कि धार्मिक हिंसा और चरमपंथी प्रवृत्तियाँ भी भारत और पाकिस्तान दोनों में किसी न किसी रूप में कुछ स्तरों पर हमेशा मौजूद रही हैं। लेकिन यह सब समस्यात्मक अनुपात में तभी आता है जब राज्य धार्मिक चरमपंथियों के हाथों का एक उपकरण बन जाता है और राज्य पाठ्य पुस्तकों में उनके संस्करणों को अपनाता है और सांप्रदायिक आधार पर सरकारी नीतियाँ बनाता है। यह पाकिस्तान में हुआ था जब जनरल जिया–उल–हक ने पाकिस्तान में पाठ्य पुस्तकों का सांप्रदायिकरण करना और पाकिस्तानी राज्य का इस्लामीकरण करना शुरू कर दिया था। नतीजा यह हुआ कि पाकिस्तान जो शांति और समृद्धि का देश होना चाहिए था, धर्म के नाम पर उग्रवाद और हिंसा का देश बन गया। पाकिस्तान ने बाद में देखा कि धर्म के नाम पर न केवल अन्य धर्मों के लोगों के खिलाफ बल्कि उसी धर्म के लोगों के खिलाफ भी सबसे बुरी तरह की हिंसा की गई थी। 1990 के दशक तक पाकिस्तान सांप्रदायिकता, उग्रवाद और आतंकवाद का गढ़ बन गया। फिर भी, पाकिस्तानी राज्य अभी भी इतिहास को सांप्रदायिक रंग देने की जिया की नीतियों के बचे हुए हिस्से से जूझ रहा है।

कुछ ऐसे भी तर्क दिये जाते हैं जो सरकार विशेष या व्यक्ति विशेष को कटघरे में खड़ा करने वाले होते हैं। मसलन यह देखा जा सकता है कि प्रधान मंत्री वाजपेयी की भाजपा सरकार के तहत भारत ने वही गलती की जो पाकिस्तान ने पाठ्य पुस्तकों के सांप्रदायिककरण की प्रक्रिया शुरू कर की थी। यह भारत में धर्म के नाम पर हिंसा की वृद्धि के साथ मेल खाता था।

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

भारत में गुस्साई भीड़ द्वारा गोरक्षा के नाम पर मुसलमानों की लिंचिंग से पता चलता है कि सांप्रदायिक इतिहास बताने वाला वास्तव में जनता को कहाँ ले जा रहे हैं। भारत में इस प्रवृत्ति को और भी बढ़ावा मिल रहा है, क्योंकि सभी स्वतंत्र पर्यवेक्षकों ने भारत में धार्मिक हिंसा और उग्रवाद में वृद्धि देखी है। सतर्क उग्रवादी हिंदू समूहों से न केवल मुसलमानों बल्कि निचली जातियों और धर्मनिरपेक्ष भारतीयों का जीवन भी खतरे में आ गया है।[123]

2020 में दक्षिण एशियाई–अमेरिकी लेखिका अंजलि एंजेटी ने 'द पार्टेड अर्थ' नामक उपन्यास लिखा जिसमें उन्होंने 1947 में ब्रिटिश शासन के अंत में भारत और पाकिस्तान के विभाजन के दर्दनाक प्रभाव को अर्थात् ट्रामा को रेखांकित करने का प्रयास किया है। विभाजन ने व्यापक और क्रूर धार्मिक और सांप्रदायिक हिंसा को जन्म दिया, जिससे अनुमानित 15 मिलियन लोग विस्थापित हुए और लगभग 500,000 से 20 लाख लोग मारे गए। द पार्टेड अर्थ विभाजन की विभीषिका से बचे लोगों और उनके वंशजों द्वारा सहन किये गये ट्रामा के साथ–साथ उपनिवेशवाद की स्थायी विरासत और समय तथा महासागरों में फैली कई पीढ़ियों के जीवन पर छाप छोड़ती है।'द पार्टेड अर्थ' में उन्होंने विभाजन की विभीषिका के उस ट्रामा पर भी प्रकाश डाला है जो उनकी स्मृतियों में है तथा उस ट्रामा के अंतर–पीढ़ीगत प्रभाव को भी रेखांकित किया है। इसके एक वर्ष पश्चात् 2021 में भारत में 14 अगस्त को पाकिस्तान विभाजन विभीषिका दिवस के तौर पर प्रतिवर्ष मनाने का निर्णय लिया गया। इस तरह की स्मृतियों को प्रतिवर्ष याद करने से जो ट्रामा विभाजन के दौरान उस विभीषिका से गुजरे हुए लोगों के मन में है वह ट्रामा वर्तमान और आने वाली पीढ़ी के मन में भी समाविष्ट होगा। इस प्रकार का इमेजिन्ड ट्रामा एक ऐसी मनोवैज्ञानिक एकता को जन्म देगा जिसमें साम्प्रदायिकता के तत्त्व अपने आप सम्मिलित होंगे। एक ऐसा इमेजिन्ड ट्रामा जो सांप्रदायिक रेखाओं पर निर्मित हो वह शत्रु–आधारित राष्ट्रवाद को बढ़ावा देते हुए घर में ही शत्रु खोजेगा। भारत के पूर्व राष्ट्रपति एवं भारत रत्न ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने कहा था कि "दिल में अगर नेकी है तो किरदार में खूबसूरती होगी। किरदार में खूबसूरती होगी तो घर में समरसता होगी। यदि घर में समरसता होगी, तो राष्ट्रों में व्यवस्था होगी। जब राष्ट्रों में व्यवस्था होगी, तब विश्व में शान्ति होगी।"

इस सम्पूर्ण विवेचन के बाद ज्ञान के वि–औपनिवेशीकरण को

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

लेकर भारत के सन्दर्भ में और प्रसंगवश दुनिया भर के हर ऐसे उपक्रम के लिए हमें कुछ अंतर्दृष्टि प्राप्त होती है और जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि किसी विशेष राजनीतिक विचारधारा, जातीयता, राष्ट्रीयता अथवा क्षेत्रीयता को एकमात्र वैध और स्वीकार्य बनाने के मुहिम से उद्भूत कोई भी उपक्रम ज्ञान के वि–औपनिवेशीकरण का माध्यम नहीं बन सकता है। ऐसे सभी उपक्रम अतीत के घावों को कुरेदने या उनपर मरहम लगाने के ऐसे प्रयत्न जरुर साबित हो सकते हैं जिससे किसी न किसी तरह का राजनीतिक ध्रुवीकरण पल्लवित–पुष्पित होता है और जो अंत में सत्य के एक ही पक्ष को प्रस्तुत कर पाता है। ऐसे सभी प्रयास बहुत अंशों में अपने–अपने सत्य पर भी कम ही निर्भर रहते हैं, बल्कि वे अपने–अपने असत्य पर ही अधिक संगठित होते हैं। इसके विपरीत ज्ञान का वि–औपनिवेशीकरण सबके अपने–अपने सत्य से भी ऊपर उठकर सबके लिए सर्वग्राह्य सत्य तक पहुंचकर ही अपनी सफलता का दावा कर सकता है और इतिहास इसका एक छोटा सा अंश मात्र है। जबकि आज हम देखते हैं कि ज्ञान के वि–औपनिवेशीकरण के प्राजेक्ट में सबसे अहम राजनीतिक इतिहास हो गया है और इसने बाकी विषयों एवं मानव जीवन के अन्य पक्षों को दबा दिया है।

वस्तुतः इतिहास सोचने, समझदारी, बौद्धिकता एवं अस्तित्व का एक झीना सा पक्ष भर है किन्तु हालिया उपक्रमों में यह ऐसे काम कर रहा है जैसे कि यह हमारे सम्पूर्ण अनुभव का और हमारी समझदारी का एकमात्र माध्यम हो। माइकल ऑकशाट की दृष्टि से यह प्रवृति इतिहास के मोड से संचालित एवं प्रेरित होने की प्रवृति है।[124] परन्तु इसके अपने जोखिम भी हैं। बहरहाल यह जोखिम एक औपनिवेशिक मानसिकता एवं ज्ञान की जगह बहुल औपनिवेशिक मानसिकता एवं बहुल औपनिवेशिक ज्ञान की ऐसी सरजमीं तैयार कर सकता है जो सम्पूर्ण मानवता को विभाजित तो करती ही है साथ ही यह राष्ट्रीय स्तर पर भी विभाजनों की नई श्रृंखला के लिए और जमीन भी तैयार करती है।

प्रोफेसर, राजनीतिशास्त्र विभाग,
आर्य महिला पी.जी. कॉलेज, (का.हि.वि.वि.), वाराणसी
शोध छात्र,मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग,
इश्वर शरण डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

सन्दर्भ एवं पाद टिप्पणी–

1. *एप्पल, माइकल(1991), द पॉलिटिक्स ऑफ द टेक्स्ट बुक, क्रिश्चियन स्मिथलिंडा द्वारा सम्पादित, न्यूयॉर्क, रूटलेज।*
2. *रुत्खेर, बर्गमान(2021), ह्यूमनकाइंड अ होपफुल हिस्ट्री, न्यूयॉर्क, ब्लूम्सबरी।*
3. *मार्क्स एवं एंजेल्स (1982),द ओरिजिन ऑफ फैमिली,प्राइवेट प्रोपर्टी एंड स्टेट, मास्को, इंटरनेशनल पब्लिशर्स।*
4. *गवर्नमेंट ऑफ पाकिस्तान (1978), नेशनल एजुकेशन पालिसी एंड इम्प्लीमेंटेशन प्रोग्राम, मिनिस्ट्री ऑफ एजुकेशन, इस्लामाबाद।*
5. *गवर्नमेंट ऑफ इंडिया (मई, 1986), नेशनल पालिसी ओन एजुकेशन–1986, डिपार्टमेंटऑफएजुकेशन, मिनिस्ट्री ऑफ ह्यूमन रिसोर्स डेवलपमेंट, नई दिल्ली।*
6. *एजुकेशन एंड ट्रेनिंग इन द ट्वेंटी फर्स्ट सेंचुरी (मई, 1991), वॉल्यूम–1,डिपार्टमेंट ऑफ एजुकेशन एंड साइंस, लन्दन, हरमेजेस्टी स्टेशनरी ऑफिस।*
7. *पॉवेल, एवरिल (1996), 'परसेप्शन ऑफ द साउथ एशियन पास्ट : आइडियोलॉजी, नेशनलिज्म एंड टेक्स्ट बुकस', निगेलक्रुकमें (सं.) द ट्रांसमिशन ऑफ नॉलेज इन साउथ एशिया : एसेज ऑन एजुकेशन, रिलिजन, हिस्ट्री एंड पॉलिटिक्स, दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृष्ठ–190–191.*
8. *श्रीधरन, ई. (2011), इतहासलेख : एक पाठ्यपुस्तक–500 ई.पू. से सन 2000 तक, अनुवाद–मंजीतसिंह सलूजा, ओरिएंट ब्लैक स्वान, पृष्ठ–62.*
9. *पॉवेल, एवरिल (1996), 'परसेप्शन ऑफ द साउथ एशियन पास्ट : आइडियोलॉजी, नेशनलिज्म एंड टेक्स्ट बुकस', निगेलक्रुकमें (सं.) द ट्रांसमिशन ऑफ नॉलेज इन साउथ एशिया : एसेज ऑन एजुकेशन, रिलिजन, हिस्ट्री एंड पॉलिटिक्स, दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृष्ठ–190–191.*
10. *https://www-coe-int/en/web/commissioner/-/atrocities-in-the-past-must-be-recognised-documented-and-learned-from-but-not-distorted-or-misused-for-political-purposes* *10 अगस्त 2022 को देखा गया।*
11. *देखें सरजॉन स्ट्रेची का 1888 में कैंब्रिज स्नातकों को दिया गया भाषण, सुमित सरकार (1989), मॉडर्न इंडिया 1885–1947, न्यूयॉर्क, पाल ग्रेवमैकमिलन, प्रष्ठ–2.*
12. *श्रीधरन, ई. (2011), इतिहास लेख : एक पाठ्य पुस्तक–500 ई.पू. सेसन 2000 तक, अनुवाद–मंजीतसिंह सलूजा, ओरिएंट ब्लैक स्वान, पृष्ठ–364.*

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

13. कुमार, कृष्ण (1989), कोलोनियल सिटीजन एज एन एजुकेशनल आइडियल, इकनोमिक एंड पोलिटिकल वीकली, वॉल्यूम–24, अंक–4, पृष्ठ–45–51.

14. पांडे, ज्ञानेंद्र (1990), द कंस्ट्रक्शन ऑफ कम्युनलिज्म इनकोलोनियल नार्थ इंडिया, दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृष्ठ–23–24.

15. देखें, नेशनल सिक्योरिटी एंड पाकिस्तान सफॉरेन पालिसी, पाकिस्तान होराइजन, अप्रैल 1990, वॉल्यूम– 43, अंक–2.

16. रहमान, तारिक (2000), 'भाषाएं और शिक्षा', क्रिस्टोफजाफरलॉट (सं.) पाकिस्तान, पेरिस, फयार्ड, पृष्ठ–432.

17. कुरैशी, आई.एच. (1962), द मुस्लिम कम्युनिटी ऑफ द इंडियन सब–कॉन्टिनेंट, दहेग, मौलटन एंड कंपनी, पृष्ठ–167.

18. शाह, जे (2012), जिया–उल–हक एंड द प्रोलिफरेशन ऑफ रिलिजनइन पाकिस्तान, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ बिजनेस एंड सोशल साइंस, वॉल्यूम–3(21), पृष्ठ–310–323.

19. मोहम्मद–आरिफ, अमीना (2005), टेक्स्टबुक्स, नेशनलिज्म एंड हिस्ट्रीराइटिंग इन इंडिया एंड पाकिस्तान, वेरोनिकबेनेई द्वारा संम्पादित, मैन्युफैक्चरिंग सिटीजनशिपः एजुकेशन एंड नेशनलिज्म इन यूरोप, साउथ एशिया एंड चाइना, लन्दन, रूटलेज, पृष्ठ–146.

20. सैगोल, रुबीना (1995), नॉलेज एंड आइडेंटिटी : आर्टिक्यूलेशन ऑफ जेंडर इन एजुकेशनल डिस्कोर्स इन पाकिस्तान,लाहौर, ए एस आर पब्लिकेशन्स, पृष्ठ–122.

21. मोहम्मद–आरिफ, अमीना एवं मोलिनर, क्रिस्टीन (16 अक्टूबर 2007), माइग्रेशन एंड कंस्ट्रक्शन ऑफ अदर, साउथ एशिया मल्टी डिसीप्लिनरी एकेडमिक जर्नल,URL : http://journals-openedition-org/samaj/195 12 vxLr 2022 को देखा गया।

22. कक्षा 5 की सामाजिक विज्ञान की पुस्तक, उद्धृत– मोहम्मद–आरिफ, अमीना (2005), टेक्स्ट बुक्स, नेशनलिज्म एंड हिस्ट्री राइटिंग इन इंडिया एंड पाकिस्तान, वेरोनिकबेनेई द्वारा संम्पादित, मैन्युफैक्चरिंग सिटीजन शिप : एजुकेशन एंड नेशनलिज्म इन यूरोप, साउथ एशिया एंड चाइना, लन्दन, रूटलेज, पृष्ठ–148.

23. सैगोल, रुबीना (1995), आइडियोलॉजी एंड आइडेंटिटीः आर्टिक्यूलेशन ऑफ जेंडर इन एजुकेशनल डिस्कोर्स इन पाकिस्तान, लाहौर, ए एस आर पब्लिकेशन्स, पृष्ठ–248.

24. मोहम्मद–आरिफ, अमीना (2005), टेक्स्टबुक्स, नेशनलिज्म एंड हिस्ट्रीराइटिंग इन

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

इंडिया एंड पाकिस्तान, वेरोनिकबेनेई द्वारा संम्पादित, मैन्युफैक्चरिंग सिटीजनशिप : एजुकेशन एंड नेशनलिज्म इन यूरोप, साउथ एशिया एंड चाइना, लन्दन, रूटलेज, पृष्ठ–148, सैगोल, रुबीना (1995), आइडियोलॉजी एंड आइडेंटिटी : आर्टिक्यूलेशन ऑफ जेंडर इन एजुकेशनल डिस्कोर्स इन पाकिस्तान, लाहौर, ए एस आर पब्लिकेशन्स, पृष्ठ–248.

25. जलाल, आयशा (1995), कांजुरिंग पाकिस्तान : हिस्ट्रीएज ऑफिसियल इमेजिनिंग, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मिडिल ईस्ट स्टडीज, वॉल्यूम–27, पृष्ठ–77–78.

26. जलाल, आयशा (1995), कांजुरिंग पाकिस्तान : हिस्ट्री एज ऑफिसियल इमेजिनिंग, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मिडिल ईस्ट स्टडीज, वॉल्यूम–27, पृष्ठ–73–89.

27. सैगोल, रुबीना (1995), आइडियोलॉजी एंड आइडेंटिटी : आर्टिक्यूलेशन ऑफ जेंडर इन एजुकेशनल डिस्कोर्स इन पाकिस्तान, लाहौर, ए एस आर पब्लिकेशन्स, पृष्ठ–218–19.

28. https://jothicharles-wordpress-com/2019/03/03/ indophobic-and-biased-education-in-pakistan/12 अगस्त 2022 को देखा गया।

29. तलबानी, ए. (1996), पेडागोजी, पॉवर एंड डिस्कोस : ट्रांसफॉर्मेशन ऑफ ईस्लामिक एजुकेशन, कम्पेरेटिव एजुकेशन रिव्यु, वॉल्यूम–40, अंक–1, पृष्ठ–66– 82.

30. मोहम्मद–आरिफ, अमीना (2005), टेक्स्टबुक्स, नेशनलिज्म एंड हिस्ट्रीराइटिंग इन इंडिया एंड पाकिस्तान, वेरोनिकबेनेई द्वारा संम्पादित, मैन्युफैक्चरिंग सिटीजनशिप : एजुकेशन एंड नेशनलिज्म इन यूरोप, साउथ एशिया एंड चाइना, लन्दन, रूटलेज, पृष्ठ–149.

31. रॉजर, यवेटे (2003), करिकुलम एज डेस्टिनी : फोर्जिगनेशनल आइडेंटिटी इन इंडिया, पाकिस्तान एंड बांग्लादेश, यूनिवर्सिटी ऑफ टेक्सास में प्रस्तुत किये गये पी.एच.डी. हेतु थीसिस (रिसर्च गेट पर उपलब्ध पी.डी.एफ. जो 12–अगस्त 2022 को देखा गया), पृष्ठ–504.

32. सैगोल, रुबीना (1995), आइडियोलॉजी एंड आइडेंटिटी: आर्टिक्यूलेशन ऑफ जेंडर इन एजुकेशनल डिस्कोर्स इन पाकिस्तान, लाहौर, ए एस आर पब्लिकेशन्स, पृष्ठ–223.

33. वहीद–उज–जमान (1974), "एडिटर्सनोट" द क्वेस्ट फॉर आइडेंटिटी, इस्लामाबाद, यूनिवर्सिटी ऑफ इस्लामाबाद प्रेस, पृष्ठ–1.य एडवर्डमोर्टिमर (1982), फेथ एंड पावर : द पॉलिटिक ऑफ इस्लाम, न्यूयॉर्क, रैंडम हाउस, पृष्ठ–215 में उद्धृत.

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

34. सैयद, अनवर हुसैन (1982), पाकिस्तानः इस्लाम, पॉलिटिक्स एंड नेशनल आइडेंटिटी, न्यूयॉर्क, प्रेजर, पृष्ठं–126.

35. सैगोल, रुबीना (1995), आइडियोलॉजी एंड आइडेंटिटी : आर्टिक्यूलेशन ऑफ जेंडर इन एजुकेशनल डिस्कोर्स इन पाकिस्तान, लाहौर, ए एस आर पब्लिकेशन्स, पृष्ठ–220.

36. सोशल स्टडीज टेक्स्ट बुक फॉर क्लास–ट, 1987, पृष्ठ–90, सैगोल, रुबीना (1995) आइडियोलॉजी एंड आइडेंटिटीः आर्टिक्यूलेशन ऑफ जेंडर इनएजुकेशनल डिस्कोर्स इन पाकिस्तान, लाहौर, ए एस आर पब्लिकेशन्स, पृष्ठ–235 पर उद्धृत.

37. मोहम्मद–आरिफ, अमीना (2005), टेक्स्टबुक्स, नेशनलिज्म एंड हिस्ट्रीराइटिंग इन इंडिया एंड पाकिस्तान, वेरोनिकबेनेई द्वारा संम्पादित, मैन्युफैक्चरिंग सिटीजनशिप : एजुकेशन एंड नेशनलिज्म इन यूरोप, साउथ एशिया एंड चाइना, लन्दन, रूटलेज, पृष्ठ–150–151.

38. *https://timesofindia-indiatimes-com/world/pakistan/pak-textbooks-focus-on-conspiracy-theories-on-1971-war/articleshow/7111377-cms* 12 अगस्त 2022 को देखा गया ।

39. जियामियां (रविवार, 6 नवंबर 1994), 'मेकिंग ऑफ द पाकिस्तान माइंड', द न्यूज, सैगोल, रुबीना (1995), आइडियोलॉजी एंड आइडेंटिटी : आर्टिक्यूलेशन ऑफ जेंडर इन एजुकेशनल डिस्कोर्स इन पाकिस्तान,लाहौर, ए एस आर पब्लिकेशन्स, पृष्ठ–263 पर उद्धृत।

40. मोहम्मद–आरिफ, अमीना (2005), टेक्स्टबुक्स, नेशनलिज्म एंड हिस्ट्रीराइटिंग इन इंडिया एंड पाकिस्तान, वेरोनिकबेनेई द्वारा संम्पादित, मैन्युफैक्चरिंग सिटीजनशिप : एजुकेशन एंड नेशनलिज्म इन यूरोप, साउथ एशिया एंड चाइना, लन्दन, रूटलेज, पृष्ठ–152.

41. ब्रे, एम. (1983), यूनिवर्सल एजुकेशन इन पाकिस्तान : अ पर्पेचुअल एलुजिबगोल?, इंटरनेशनल रिव्यु ऑफ एजुकेशन, वॉल्यूम–29, अंक–2, पृष्ठ–167–168.

42. कुमार, कृष्ण (1991), पोलिटिकल एजेंडा ऑफ एजुकेशन : अ स्टडी ऑफ कोलोनिअलिस्ट एंड नेशनलिस्ट आइडियाज, लन्दन, सेज पब्लिकेशन्स.

43. उदाहरण के लिए, देखें, कपूरथला में प्रयुक्त भूगोल की पाठ्यपुस्तक के संबंध में लाहौर के पैसा अखबार का हवाला देते हुए, भारतीय सुधारक 10 अक्टूबर 1895। उत्तरभारत के वर्नाक्युलर समाचार पत्रों से चयन, अक्टूबर 30, 1895, पृष्ठ–528.

44. देव, अर्जुन (2001), 'एनसीईआरटी, "नेशनल करिकुलम" एंड "डिस्ट्रक्शन ऑफ

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

हिस्ट्री", SAHMAT & SABRANG-COM में, अगेंस्ट कमर्शियलाइजेशन ऑफ एजुकेशन, नई दिल्ली,SAHMAT, 4–6 अगस्त, पृष्ठ–137–54.

45. प्रशासनिक उद्देश्यों के लिए, भारत के संविधान के तहत, विभिन्न विषयों को संघ सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची (संयुक्त सूची) के तहत लाया गया था। समवर्ती सूची मेंशिक्षा, समाचारपत्र, आर्थिक नियोजन आदि जैसे विषय हैं जो केंद्र और राज्य दोनों सरकारों के लिए समान चिंता का विषय हो सकते हैं। इसलिए, केंद्र और राज्य दोनों सरकारें ज्यादातर सहयोग परस्पर सहयोग से निर्णय लेती हैं।

46. https://www.revolutionarydemocracy.org/rdv9n2/textbook.htm 13 अगस्त 2022 को देखा गया।

47. वॉर्नी एडवर्डजे. (1992), हिस्ट्री ऑफ इंडियन स्कूल्स : अ स्टडी ऑफ टेक्स्ट बुक्स प्रोडूस डबायद सेंट्रल गवर्नमेंट एंड द स्टेट गवर्नमेंटस ऑफ महाराष्ट्र, गुजरात, वेस्ट बंगाल, आंध्रप्रदेश, केरल एंड तमिलनाडु, पी.एच.डी. हेतु प्रस्तुत किया गया शोध, न्यूयॉर्क यूनिवर्सिटी, पृष्ठ–13.

48. वॉर्नी, एडवर्डजे. (1992), हिस्ट्री ऑफ इंडियन स्कूल्स : अ स्टडी ऑफ टेक्स्ट बुक्स प्रोडूस डबायद सेंट्रल गवर्नमेंट एंड द स्टेट गवर्नमेंटस ऑफ महाराष्ट्र, गुजरात, वेस्टबंगाल, आंध्रप्रदेश, केरल एंड तमिलनाडु, पी.एच.डी. हेतु प्रस्तुत किया गया शोध, न्यूयॉर्क यूनिवर्सिटी, पृष्ठ–13.

49. मोहम्मद–आरिफ, अमीना (2005), टेक्स्टबुक्स, नेशनलिज्म एंड हिस्ट्री राइटिंग इन इंडिया एंड पाकिस्तान, वेरोनिकबेनेई द्वारा संम्पादित, मैन्युफैक्चरिंग सिटीजनशिप : एजुकेशन एंड नेशनलिज्म इन यूरोप, साउथ एशिया एंड चाइना, लन्दन, रूटलेज, पृष्ठ–153.

50. देखें–एनसीईआरटी गाइडलाइन्स फॉर हिस्ट्री, पृष्ठ–58–59. https://www.revolutionarydemocracy.org/rdv9n2/textbook.html पर उद्धृत.

51. देखें, तत्कालीन एन सी ई आर टी के अध्यक्ष के. गोपालन द्वारा लिखा गया फोरवर्ड, चंद्रा, सतीश (2001 ख1990), इंडियन– हिस्ट्री टेक्स्ट बुक फॉर क्लास XI, दिल्ली, एन सी ई आर टी.

52. मुखर्जी, आदित्य एवं मुखर्जी मृदुला (2002), (सम्पादित), कम्युनलाईजेसन ऑफ एजुकेशन : द हिस्ट्री टेक्स्ट बुक कंट्रोवर्सी, डेल्ही हिस्टोरियंस; मेनस्ट्रीम, वार्षिक अंक, 22 दिसम्बर 2001.

53. मुखर्जी, आदित्य एवं मुखर्जी, मृदुला (2002), (सम्पादित), कम्युनलाईजेसन ऑफ एजुकेशन : द हिस्ट्री टेक्स्ट बुक कंट्रोवर्सी, डेल्ही हिस्टोरियंस; मेन स्ट्रीम, वार्षिक अंक, 22 दिसम्बर 2001.

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

54. खालिद, हारुन (2018), इमेजिनिंग लाहौर, न्यूयॉर्क, पेंगुइन वाइ किंग, पृष्ठ–162–168.

55. चन्द्र, तारा (1961), हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मूवमेंट, 4 वॉल्यूम, नई दिल्ली, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, मिनिन्स्ट्री ऑफ इन फार्मेशन एंड ब्राडकास्टिंग, पब्लिकेशन्स डिवीजन, पृष्ठ–111–112.

56. नेहरु, जवाहरलाल (1981), द डिस्कवरी ऑफ इंडिया, दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृष्ठ–270.

57. सरकार, जदुनाथ (1919), हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, खडं–4, नई दिल्ली, ओरिएंटलोंगमान, पृष्ठ–249–50.

58. देखें, सीताराम गोयल, (16 अप्रैल 1989), सम हिस्टोरिकल क्वेश्चन्स, इंडियन एक्सप्रेस, पृष्ठ–8.

59. चन्द्र, विपन (1969), कम्युनलिज्म एंड द राइटिंग ऑफ इंडियन हिस्ट्री, नई दिल्ली, पीपल्स पब्लिशिंग हाउस, पृष्ठ–29.

60. https://www-outlookindia-com/website/story/ communalisation-of-education/214547 13 अगस्त 2022 को देखा गया।

61. https://www.revolutionarydemocracy.org/rdv9n2/textbook.htm 16 अगस्त 2022 को देखा गया।

62. https://www.outlookindia.com/website/story/ communalisation- of-education/214547 13 अगस्त 2022 को देखा गया।

63. नायर, दीपा (2009), कन्टेंडिंग हिस्टोरिकल आइडेंटिटीज इन इंडिया, जर्नल ऑफ एजुकेशनल मीडिया, मेमोरी एंड सोसाइटी, वॉल्यूम–1, अंक–1, पृष्ठ–145–164.

64. 1977 के पाठ्यपुस्तक विवाद को विस्तृत रूप से समझने के लिए देखें, चौधरी, वी. सी.पी. (1977), सेकुलरिज्म वर्सेज कम्युनलिज्मः एन एनाटोमी ऑफ द नेशनल डिबेट ओन फाइव कोन्ट्रोवेर्सिअल हिस्ट्री टेक्स्ट बुक्स, पटना, नवधारणा समिति.

65. नायर, दीपा (2009), कन्टेंडिंग हिस्टोरिकल आइडेंटिटीज इन इंडिया, जर्नल ऑफ एजुकेशनल मीडिया, मेमोरी एंड सोसाइटी, वॉल्यूम–1, अंक–1, पृष्ठ–145–164.

66. नायर, दीपा (2009), कन्टेंडिंग हिस्टोरिकल आइडेंटिटीज इन इंडिया, जर्नल ऑफ एजुकेशनल मीडिया, मेमोरी एंड सोसाइटी, वॉल्यूम–1, अंक–1, पृष्ठ–145–164.

67. रोमिलाथापर, बिपनचंद्र और हरबंसमुखिया (1969), हिस्टोरियंस ऑफ मॉडर्न इंडिया एंड कम्युनलिज्म, इन, कम्युनलिज्म एंड राइटिंग ऑफ इंडियन हिस्ट्री, दिल्ली, पी.पी.पी., पृष्ठ–36.

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

68. मुखिया, हरबंश (अगस्त, 1983), कम्युनलिज्म एंड द राइटिंग ऑफ मिडिवल इंडियन हिस्ट्री : अरी–अप्रैजल, सोशलसाइंटिस्ट, वॉल्यूम–11, अंक–8, पृष्ठ. 58–65.

69. सामासिक संकृति की अवधारणा इलाहबाद स्कूल ऑफ हिस्टोरियंस का विशेष योगदान है। इस स्कूल से सम्बंधित इतिहासकार है ताराचंद, आर.पी. त्रिपाठी, बी. पी. सक्सेना आदि हैं।

70. एक उदाहरण के रूप में, आतंकवाद रोकथाम अधिनियम (पोटा) के तहत अधिकांश अनिश्चितकालीन बंदी मुसलमान थे, जबकि कुछ हिंदू राष्ट्रवादी संगठनों के हिंसक सदस्यों पर शायद ही कभी इस अधिनियम के तहत आरोप लगाया गया था। उदाहरण के लिए देखें, "टेरर ऑफ पोटा एंड अदर सिक्योरिटी लेजिस्लेशन" आतंकवाद निवारण अधिनियम और अन्य सुरक्षा कानून पर पीपुल्सट्रिब्यूनल की रिपोर्ट "नई दिल्ली (मार्च, 2004), मुस्लिम समुदाय को परेशान करने के लिए पोटा के उपयोग के भारी सबूतों के परिणामस्वरूप 2004 में कांग्रेस पार्टी के सत्ता में आने पर भारत सरकार द्वारा पोटा को निरस्त कर दिया गया था।

71. विश्वेश्वरन, कमला, माइकलविट्ज़ेल, नंदिनी मांजरेनकर, दीप्तभोग और उमा चक्रवर्ती (2009), द हिंदुत्व व्यू ऑफ हिस्ट्रीः री– राइटिंग टेक्स्ट बुक्स इन इंडिया एंड यूनाइटेड स्टेट्स, जार्ज टाउन, जर्नल ऑफ इंटरनेशनल अफेयर्स, वॉल्यूम–10, अंक–1, पृष्ठ–101–112.

72. विश्वेश्वरन, कमला, माइकलविट्ज़ेल, नंदिनीमांजरेनकर, दीप्तभोग और उमाचक्रवर्ती (2009), द हिंदुत्व व्यू ऑफ हिस्ट्रीः री– राइटिंग टेक्स्ट बुक्स इन इंडिया एंड यूनाइटेड स्टेट्स, जार्ज टाउन, जर्नल ऑफ इंटरनेशनल अफेयर्स, वॉल्यूम–10, अंक–1, पृष्ठ–101–112.

73. http://www.indiatogether.org/2007/feb/edu-gujtexts.htm#continue 17 अगस्त 2022 कोदेखागया।

74. विश्वेश्वरन, कमला, माइकलविट्ज़ेल, नंदिनीमांजरेनकर, दीप्तभोग और उमाचक्रवर्ती (2009), द हिंदुत्व व्यू ऑफ हिस्ट्रीः री–राइटिंग टेक्स्ट बुक्स इन इंडिया एंड यूनाइटेडस्टेट्स, जार्ज टाउन, जर्नल ऑफ इंटरनेशनल अफेयर्स, वॉल्यूम–10, अंक–1, पृष्ठ–101–112.

75. http://www.sacw.net/HateEducation/apoorvJan07.html 17 अगस्त 2022 को देखा गया ।

76. जोशुआ, अनीता (2003), 'इंडेक्स ऑफ एररस' इन हिस्ट्री टेक्स्ट बुक्स, द हिन्दू

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

(जून), केटलीन वेस्टर फील्ड द्वारा द सैफरनाइजेसन ऑफ इंडियन टेक्स्ट बुक्स में उद्धृत.

77. हबीब, इरफान (2002), द री–राइटिंग ऑफ हिस्ट्री बाय संघ परिवार, इन डेल्ही हिस्टोरियंस ग्रुप पब्लिकेशन कम्युनलायजेसन ऑफ एजुकेशनः द हिस्ट्री टेक्स्ट बुक्स कंट्रोवर्सी, अरिपोर्टइन 2002, न्यू डेल्ही, जवाहरलाल नेहरु यूनिवर्सिटी, इंडिया.

78. रिड, सईद एवं हसन मोहम्मद (2020), द राइज ऑफ रिलीजियस फंडामेंटलिज्म एंड कम्युनलायजेसन ऑफ हिस्ट्री टेक्स्ट बुक्स इन इंडिया एंड पाकिस्तान अस्सेस्मेंट, द गवर्नमेंट : रिसर्च जर्नल ऑफ पोलिटिकल साइंस, वॉल्यूम–9, पृष्ठ–48–61.

79. रिड, सईद एवं हसन मोहम्मद (2020), द राइज ऑफ रिलीजियस फंडामेंटलिज्म एंड कम्युनलायजेसन ऑफ हिस्ट्री टेक्स्ट बुक्स इन इंडिया एंड पाकिस्तान अस्सेस्मेंट, द गवर्नमेंट : रिसर्च जर्नल ऑफ पोलिटिकल साइंस, वॉल्यूम–9, पृष्ठ–48–61.

80. थापर, रोमिला (2002), प्रोपेगंडा एज हिस्ट्रीवोन्ट सेल, इन डेल्ही हिस्टोरियंस ग्रुप पब्लिकेशन कम्युनलायजेसन ऑफ एजुकेशन : द हिस्ट्रीटेक्स्ट बुक्स कंट्रोवर्सी, अ रिपोर्टइन 2002, न्यू डेल्ही, जवाहरलाल नेहरु यूनिवर्सिटी, इंडिया.

81. *https://indianexpress-com/article/education/from-modis-swachh-bharat-noteban-to-ganga-and-digital-india-govt-schemes-enter-ncert-textbooks-5199426/* 13 अगस्त 2022 को देखा गया ।

82. *https://indianeÛpress-com/article/education/from-modis-swachh-bharat-noteban-to-ganga-and-digital-india-govt-schemes-enter-ncert-textbooks-5199426/* 13 अगस्त 2022 कोदेखागयाद्य

83. दोशी, विधि (2018), इंडियाज न्यू टेक्स्ट बुक्स आर प्रोमोटिंग द प्राइममिनिस्टर्स फेवरेट पॉलिसीज

84. दोशी, विधि (2018), इंडियाज न्यू टेक्स्ट बुक्स आर प्रोमोटिंग द प्राइममिनिस्टर्स फेवरेट पॉलिसीज

85. केटलीन वेस्टर फील्ड (8 मई 2019), द सैफरनाइजेसन ऑफ इंडियन टेक्स्ट बुक्सः अ स्टडी ऑफ द एक्सटेंट एंड इम्प्लीकेसनस ऑफ बी.जे.पी. टेक्स्ट बुक मैनीपुलेशन 2002–2018, आर.एल.एस.टी.: हिन्दू नेशनलिज्म.

86. *https://www.nybooks.com/articles/2018/12/06/indias-dangerous-new-curriculum/* 14 अगस्त 2022 को देखा गया ।

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

87. *https://www.hindustantimes.com/india&news/rewriting-history-akbar-lost-to-maharana-pratap-no-mahatma-or-nehru-in-texts/story-N0xOT7Pqq6XGEvAgFXnBvI-html* 15 अगस्त 2022 को देखा गया ।

88. *https://www-indiatimes-com/news/india/not-just-hadighati-battle-rajasthan-textbooks-have-been-in-controversy-six-times-in-last-one-year-271180-html* 16 अगस्त 2022 को देखा गया ।

89. *https://indianexpress.com/article/political-pulse/how-history-changes-every-five-years-in-rajasthan-a-textbook-case-7888619/* 16 अगस्त 2022 को देखा गया ।

90. वेस्टरफील्ड, केटलीन (2019), द सैफरनाइजेसन ऑफ इंडियन टेक्स्ट बुक्स, पृष्ठ–12. *http://caitlinwesterfield.com/writing_samples/RLST375-pdf* पर उपलब्ध, 16 अगस्त 2022 को देखा गया ।

91. वेस्टरफील्ड, केटलीन (2019), द सैफरनाइजेसन ऑफ इंडियन टेक्स्ट बुक्स, पृष्ठ–13. *http://caitlinwesterfield.com/writing_samples/RLST375.pdf* पर उपलब्ध, 16 अगस्त 2022 को देखा गया ।

92. आनंद, कुशा और लाल, मैरी (2022), द डिबेट बिटवीनसेकुलरिज्म एंड हिन्दू नेशनलिज्म– हाउ इंडियाज टेक्स्ट बुक्स हैवबिकमद गोवेर्न्मेंट्स मीडियम फॉर पोलिटिकल कम्युनिकेशन, इंडिया रिव्यु, वॉल्यूम–21, अंक–1, पृष्ठ–77–107.

93. वणिक, ए. (2001) 'द न्यू इंडियन राइट', न्यूलेफ्टरिव्यू, वॉल्यूम–9, पृष्ठ–43.

94. आनंद, कुशा और लाल, मैरी (2022), द डिबेट बिटवीन सेकुलरिज्म एंड हिन्दू नेशनलिज्म– हाउ इंडियाज टेक्स्ट बुक्स हैव बिकम द गोवेर्न्मेंट्स मीडियम फॉर पोलिटिकल कम्युनिकेशन, इंडिया रिव्यु, वॉल्यूम–21, अंक–1, पृष्ठ–77–107.

95. वायकर, पी. (2018), रीडिंग इस्लामो फोबिया इन हिंदुत्व : एन एनालिसिस ऑफ नरेन्द्र मोदी जियोपोलिटिकल डिस्कोर्स, इस्लामोफोबिया स्टडीज जर्नल, वॉल्यूम–4, अंक–2, पृष्ठ–161–180.

96. थापर, रोमिला (2014), द पास्ट एज प्रेजेंटः फोर्जिंग कंटेम्पररी आइडेंटिटीज थ्रू हिस्ट्री, न्यू डेल्ही, अलेफ बुक कंपनी.

97. आनंद, कुशा और लाल, मैरी (2022), द डिबेट बिटवीन सेकुलरिज्म एंड हिन्दू नेशनलिज्म– हाउ इंडियाज टेक्स्ट बुक्स हैव बिकमद गोवेर्न्मेंट्स मीडियम फॉर पोलिटिकल कम्युनिकेशन, इंडियारिव्यु, वॉल्यूम–21, अंक–1, पृष्ठ–77–107.

98. *https://www.dw.com/en/india-is-the-ruling-bjps-hindutva-approach-a-civilizational-principle/a-60835665* 20 अगस्त 2022 को देखा गया।

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

99. देखें, कक्षा 9 के लिए हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड की पाठ्यपुस्तक सामाजिक विज्ञान–इतिहास–हमारा भारत–IV, प्रथम संस्करण–2022, हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड, भिवानी, पृष्ठ–54–55.

100. *https://timesofindia.indiatimes.com/city/gurgaon/cong-netas-greed-for-power-key-cause-behind-partition-haryana-textbooks/ articles how/ 91529391-cms* 19 अगस्त 2022 को देखा गया।

101. देखें, कक्षा 9 के लिए हरियाणा विद्यालय शिक्षा वोर्ड की पाठ्यपुस्तक' सामाजिक विज्ञान– इतिहास–हमाराभारत–IV, प्रथम संस्करण–2022, हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड, भिवानी, पृष्ठ–108–109.

102. देखें, कक्षा 9 के लिए हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड की पाठ्यपुस्तक' सामाजिक विज्ञान– इतिहास–हमारा भारत–IV, प्रथम संस्करण–2022, हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड, भिवानी, पृष्ठ–12.

103. *https://theprint.in/india/education/haryana-karnataka-gujarat-bjp-states-make-school-textbook-changes-reignite-old-debate/973185/* 18 अगस्त 2022 कोदेखागया द्य

104. *https://thediplomat.com/2022/07/school-social-science-textbook-revisions-in-india-kick-up-controversy/* 20 अगस्त 2022 को देखा गया।

105. *https://thediplomat-com/2022/07/school-social-science-textbook-revisions-in-india-kick-up-controversy/* 20 अगस्त 2022 को देखा गया।

106. *https://thediplomat.com/2022/07/school-social-science-textbook-revisions-in-india-kick-up-controversy/* 20 अगस्त 2022 को देखा गया।

107. *https://carnegieendowment.org/2019/11/16/bjp-has-been-effective-in-transmitting-its-version-of-indian-history-to-next-generation-of-learners-pub-80373* 20 अगस्त 2022 को देखा गया।

108. *https://carnegieendowment.org/2019/11/16/bjp-has-been-effective-in-transmitting-its-version-of-indian-history-to-next-generation-of-learners-pub–80373* 20 अगस्त 2022 को देखा गया।

109. *https://carnegieendowment.org/2019/11/16/bjp-has-been-effective-in-transmitting-its-version-of-indian-history-to-next-generation-of-learners-pub-80373* 20 अगस्त 2022 को देखा गया।

110. हॉब्सबॉम, एरिक (1990), नेशनस एंड नेशनलिज्मसिंस 1780, कैंब्रिज, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

111. दीन–ए–इलाही 1582 ईस्वी में मुगल राजा अकबर द्वारा शुरू किया गया एक समन्वित धार्मिक आंदोलन था, जिसका उद्देश्य विभिन्न धर्मों, मुख्यतः इस्लाम और हिंदू धर्म के तत्वों और प्रथाओं को एक साथ लाना था। यद्यपि धार्मिक विवादों को कम करने के तरीके के रूप में इसका इरादा था, इसके परिणामस्वरूप भारतीय मुसलमानों का कड़ा विरोध हुआ और इसे धार्मिक से अधिक राजनीतिक उपकरण के रूप में देखा गया। विस्तृत जानकारी के लिए देखें, रॉय चौधरी, माखनलाल (1997), ददीन–ए–इलाही : द रिलिजन ऑफ अकबर, नई दिल्ली, मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स प्रा. लिमिटेड.

112. बेहुरिया, ए. और शहजाद, एम. (2013), पार्टीशन ऑफ हिस्ट्री इनटेक्स्ट बुक्स इन पाकिस्तान : इम्प्लिकेसंस ऑफ सेलेक्टिव मेमोरी एंड फोरगेटिंग, स्ट्रेटेजिक एनालिसिस, वॉल्यूम–37, अंक–3, पृष्ठ–353–365.

113. *https://www-nybooks.com/articles/2018/12/06/indias-dangerous-new-curriculum/* 15 अगस्त 2022 को देखा गया।

114. शर्मा, मणिमुग्ध (2019), अल्लाहु अकबर : अंडरस्टैंडिंग ग्रेट मुगल इन टुडेज इंडिया, नई दिल्ली, ब्लूम्सबरी.

115. शेषन, राधिका (2007), राइटिंग द नेशन इन इंडिया : कम्युनलिज्म एंड हस्टोरिओग्राफी, एस. बेर्गेर द्वारा सम्पादित, राइटिंग द नेशन, लन्दन, पाल ग्रेवमाक मिलन, पृष्ठ–155–156.

116. जोशी, संजय (जुलाई 2010), कंटेस्टिंग हिस्ट्रीज एंड नेशनलिस्ट जियोग्राफीज : कॉम्पेरिजन ऑफ स्कूल बुक्स इन इंडिया एंड पाकिस्तान, साउथ एशियाई हिस्ट्री एंडकल्चर, वॉल्यूम–1, पृष्ठ–357–377.

117. कडीवाल, एल, और जैन, एम (2020), सिविक्स एंड सिटीजनशिप एजुकेशन इन इंडिया एंड पाकिस्तान, हैंडबुक ऑफ एजुकेशन सिस्टम्स इन साउथ एशिया, पृष्ठ–1–27.

118. न्यू एजुकेशन पालिसी ड्राफ्ट 2020, मिनिस्ट्री ऑफ ह्यूमन रिसोर्स डेवलपमेंट, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, *https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0-pdf*

119. न्यू एजुकेशन पालिसी ड्राफ्ट 2020, मिनिस्ट्री ऑफ ह्यूमन रिसोर्स डेवलपमेंट, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, *https://www.education.gov.in/sites/upload_ files/mhrd/files/NEP_Final_English_0-pdf*

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

120. ग्राम्सी, एंटोनियो (1971), सिलेक्शनस फ्रॉम द प्रिजन नोट बुक्स, लन्दन, लॉरेंस और विशार्ट.

121. http://caitlinwesterfield.com/writing_samples/RLST375-pdf 8 अगस्त 2022 को देखा गया ।

122. नायर, दीपा (2009), कन्टेंडिंग 'हिस्टोरिकल' आइडेंटिटीज इन इंडिया, जर्नल ऑफ एजुकेशनल मीडिया, मेमोरी एंड सोसाइटी, वॉल्यूम–1, पृष्ठ–145–164.

123. रिड, सईद एवं हसन मोहम्मद (2020), दराइज ऑफ रिलीजियस फंडामेंटलिज्म एंड कम्युनलायजेसन ऑफ हिस्ट्री टेक्स्ट बुक्स इन इंडिया एंड पाकिस्तान अस्सेस्मेंट, द गवर्नमेंट : रिसर्च जर्नल ऑफ पोलिटिकल साइंस, वॉल्यूम–X, पृष्ठ–48–61.

124. माइकल ऑकशाट (1993),एक्सपीरियंस एंड इट्स मोड्स, कैंब्रिज, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, पृष्ठ, 48.

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

वाक्, विचार तथा व्यवहार : भर्तृहरीय दृष्टि

बलराम शुक्ल

"न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते"
—भर्तृहरि
(इस संसार में किसी भी तरह का
सम्प्रत्यय शब्द के बिना सम्भव नहीं है)

मनुष्य के सारे छोटे मोटे व्यवहार, चाहे, वे व्यक्तिगत हों या समाजिक, ज्ञान विज्ञान से संबद्ध हों या कलाओं से, सबकी सम्भावना भाषा के माध्यम से ही है। उनका शिक्षण, उनके मध्य सूक्ष्म या स्थूल भेद का ज्ञान भाषा द्वारा ही हो पाता है[1]। सभी प्रकार के विचार, चाहे उनको अवधारणा की स्थिति से ले जाकर मूर्त करने जैसा वैयक्तिक उपक्रम हो, चाहे बृहत्तर समाज में सिद्धान्त के रूप में उनके प्रसार की चेष्टा हो, हर जगह भाषा ही काम आती है। महोपाध्याय भर्तृहरि का तो मत है कि इस संसार में किसी भी तरह के सम्प्रत्यय की कल्पना शब्द के बिना सम्भव ही नहीं है। प्राणिमात्र की सारी संवेदना भाषा से गुँथी हैं[2]। यहाँ तक कि मनुष्य अपना मानसिक चित्र भी भाषा के माध्यम से ही बनाता है। व्यक्ति जिस प्रकार की भाषा में अपने आपको व्यक्त कर पाता है उससे उसकी विचार सरणि ज्ञात होती ही है। यदि किसी वस्तु के लिए आपके पास शब्द नहीं है तो वह आपके लिए नहीं के बराबर है-सदपि वाग्व्यवहारेण अनुपगृहीतम् अर्थरूपम् असता तुल्यम् (वा. प. स्वो.वृ. 1.121)। इसके उलट संसार में जो वस्तुएँ विद्यमान नहीं हैं उन्हें भी यदि शब्द के द्वारा कह दिया जाये तो वे विद्यमान की तरह हो जाती हैं और वे व्यवहार में आने योग्य हो जाती हैं, जैसे खरगोश की सींग, वन्ध्यापुत्र आदि शब्द(अत्यन्तासच्च प्रसिद्धं लोके शशविषाणादिप्राप्ताविर्भावतिरोभावं च गन्धर्वनगरादिवाचा समुत्थाप्यमानं मुख्यसत्तायुक्तमिव तेषु तेषु कार्येषु प्रत्यवभासते (वा.प. स्वो.वृ. 1.121)। भर्तृहरि का कथन है—अत्यन्तमतथाभूते

उन्मीलन - वर्ष 36, अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2022
ISSN-0974-0053
U.G.C. Care List : Arts & Humanities, SI.No. 310

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

निमित्ते श्रुत्युपाश्रयात्। दृश्यतेऽलातचक्रादौ वस्त्वाकारनिरूपणा।।(वा.प.1.129) बौद्धिक व्यवहार में बाह्य वस्तु की सत्ता अथवा असत्ता भाषा के अधीन होती है—न च बाह्य वस्तुगतं सदसत्त्वं श्रुतिरपेक्षते।। (वा.प.स्वो.वृत्ति 1.129)। व्यक्ति के विचारों की पूँजी उसकी भाषा के समानुपाती होती है। क्योंकि व्यक्ति का चिन्तन वस्तुतः उसकी भाषा का ही एक सूक्ष्म प्रकार है (यः क्रतुः शब्दसञ्ज्ञकः—वा.प. 1.152) व्यक्त ध्वन्यात्मक भाषा यदि वैखरी वाणी है तो विचार अव्यक्त मध्यमा भाषा है। प्रायः देखा जाता है कि उत्तम विचारक उत्कृष्ट कोटि की भाषिक अभिव्यक्तियों के स्वामी होते हैं। इसमें उपर्युक्त बात ही कारण है।

कहा गया है कि सारा संसार अन्धकूप की तरह हो जाए अगर शब्द की ज्योति इसे प्रकाशित न करें[3]। कारण यह है कि चाहे चीजें स्वयं में प्रकाशयुक्त हों या अप्रकाशित, हमारे प्रति वे तभी प्रकाशित हो पाती हैं जब हम उन्हें भाषा के माध्यम से जान पाते हैं। भर्तृहरि ने वाक्यपदीय 1.12 की वृत्ति में कहा है कि इस संसार में तीन प्रकार के प्रकाश हैं पहला अग्नि, सूर्य आदि, दूसरा हमारा आन्तरिक ज्ञान का प्रकाश और तीसरा है इन दोनों को और सभी अप्रकाशमान् वस्तुओं को प्रकाशित करने वाला शब्दात्मक प्रकाश[4]। भाषा एक सामाजिक संविदा की तरह है जिसे उपकरण बनाकर कर मनुष्य समाज को समझ पाता है और समाज के प्रति अपने आपको समझा भी पाता है। जो भी बात हम जान पाते हैं (चाहे बाहरी स्रोत से हो अथवा स्वतः अपने चिन्तन के द्वारा) वह सब भाषा के द्वारा ही सम्भव होता है। फिर, हमने क्या जाना है उसको भी हम भाषा के द्वारा ही समझ पाते हैं। इसलिए भर्तृहरि भाषा को प्रकाश का भी प्रकाशक कहते हैं। समस्त ज्ञानों को हम शब्द के स्वरूप में ही ग्रहण कर पाते हैं। ज्ञान हमारे प्रति प्रकट तभी हो पाता है जब वह वाग्रूप में गृहीत होता है। यदि ऐसा न हो तो हमें ज्ञान होगा ही नहीं[5]। ज्ञान होने के बाद उसकी बाह्य प्रस्तुति भी भाषा के ही माध्यम से होती है। स्वयं अपनी समझ को दृढ़ करने के लिए हम मानसिक भाषा का आवर्ती इस्तेमाल करते हैं और जब वह दृढ़ हो जाती है तो दूसरों को समझाने के लिए ध्वन्यात्मक भाषा का प्रयोग करते हैं।

हमारी व्यक्तिगत तथा सामाजिक प्रतिष्ठाओं का आधार भाषा है। जैसे ठीक ठीक बोल पाना उत्तम वक्तृता है उसी प्रकार सूक्ष्म और सम्यक् चिन्तन कर पाना मानसिक भाषा में दक्ष होना है। इसका मतलब है हम

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

कितना जानते हैं और उस ज्ञान को कितना प्रस्तुत कर पाते हैं। हम सभी यह जानते हैं कि सांसारिक उपलब्धियों में इन दोनों योग्यताओं का कितना हाथ है। ऋग्वेद के दसवें मण्डल का 125 वाँ सूक्त वाक्सूक्त कहलाता है। उसमें वाणी के वैश्विक सामर्थ्य तथा उदार दानशीलता का वर्णन स्वयं वाणी के शब्दों में प्राप्त होता है[6]। इसमें वाक् स्वयं घोषणा करती है–"मैं जिसे भी चाहती हूँ उसे प्रतिष्ठित, ब्राह्मण, विद्वान् यहाँ तक कि ऋषि बना देती हूँ[7]। सभी प्रकार की समृद्धियों को प्राप्त कराने वाली मैं ही हूँ[8]। राष्ट्र का निर्माण तथा उसकी शत्रुओं से सुरक्षा, सुरक्षा हेतु भीषण युद्ध आदि उपक्रम सब की नायिका मैं ही हूँ[9]। ज्ञान विरोधी कुतार्किक अपसंस्कृति के विरुद्ध भी मैं वाणी ही धनुष तानती हूँ[10]। जो मेरे इस व्यापक महत्त्व को नहीं जानते हैं वे क्षीण हो जाते हैं[11]। भारत में वाक् के इस सर्वव्यापी महत्त्व को समझकर इसकी उपासना चिरन्तनकाल से ही प्रारम्भ हो गयी थी। अनादिकाल से भारतीयों की स्पृहा यह रही है कि "वाणी हमारे प्रति अपने आपको अनावृत कर दे[12]"। शब्द को समझने–समझाने वाले शास्त्रों का अद्भुत रूप से समृद्ध विकास यह दिखाता है कि भारतीयों ने शब्द के माहात्म्य को कितनी गहराई से समझ लिया था। वैदिक संहिताओं और उसके बाद उनके उच्चारण के लिए निर्मित प्रातिशाख्य ग्रन्थों, तथा अन्य वेदाङ्गों जैसे निरुक्त, व्याकरण आदि में भाषा सम्बन्धी चिरन्तन चर्चाएँ सुरक्षित हैं।

सामान्य व्यवहार की भाषा के अतिरिक्त भाषा का विशेष उपयोग सूक्ष्म भावनाओं के प्रकटीकरण तथा पारलौकिक साधनों के लिए भी होता रहा है। भाषा के हर प्रकार के उपयोग में उसकी शैली तथा उसकी प्रस्तुति इस तरह भिन्न हो जाती है कि उसे समझने के लिए अलग शास्त्र की आवश्यकता होती है। इन शास्त्रों का विकास भारत में सदियों से होता रहा है। उदाहरण के लिए भाषा का रसानुकूल, सशक्त तथा सुललित प्रयोग साहित्य में होता है। इसमें प्रयुक्त शब्दों तथा अर्थों की विवेचना के लिए अलंकार शास्त्र के रूप में एक अलग ही शास्त्र का विकास सहस्राब्दियों तक होता रहा है। काव्य शास्त्र के सारे प्रमेयों की व्यापृति इस रहस्य का पता लगाने में होती है कि कवि द्वारा प्रयुक्त कविता की भाषा इतने रुचिर अर्थ देने में समर्थ कैसे हो पाती है। शब्दों के औचित्यपूर्ण प्रयोग उनसे प्राप्त विभिन्न अर्थों के साथ शब्दों के सम्बन्ध अर्थात् शब्द–शक्तियाँ, उनकी लम्बी चर्चाओं का विषय रहे हैं। ये शक्तियाँ अभिधा, लक्षणा तथा व्यञ्जना इन

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

नामों से जानी जाती हैं। तदनुरूप वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ तथा व्यंग्यार्थ की प्रकृतिगत विविधता के आधार पर अर्थ के स्तर पर व्यापृत होने वाली शक्तियाँ 3 प्रकार (अभिधा, लक्षणा तथा व्यञ्जना) की मानी गयी हैं। अर्थ का पदशः निर्धारण करके वाक्यार्थ तक पहुँचने का प्रथम स्तर अभिधा से सम्बद्ध है। इसके द्वारा प्राप्त अर्थ सर्वजनसामान्य होता है। द्वितीय स्तर का वाक्यार्थ निर्धारण वहाँ होता है जहाँ अभिधा से प्राप्त वाक्यार्थ का अवबोध श्रोता को हो तो जाता है लेकिन उस वाक्यार्थ से वक्ता का तात्पर्य बाधित हो जाता है। अर्थग्रहण में आई इस बाधा को पदार्थों से सम्बन्धित किसी अन्य अर्थ का ग्रहण करके वाक्यार्थ का संगतिपूर्ण निर्धारण किया जाता है। यह कार्य लक्षणा शक्ति से सम्पन्न होता है। पूर्वोक्त दोनों स्तरों पर वाक्यार्थ का निर्धारण हो जाने के बाद भी अनेक बार ऐसा होता है श्रोता को उसी वाक्यार्थ से एक अथवा अनेक दूसरे वाक्यार्थ प्रतीत होने लगते हैं। इन नये वाक्यार्थों की व्याख्या के लिए व्यञ्जना शक्ति उत्तरदायी होती है। कविता के सारे रससौन्दर्य की व्याख्या इसी शक्ति के द्वारा की जाती है। लेकिन ऐसा नहीं है कि व्यञ्जना शक्ति केवल काव्यात्मक वाक्यों तक ही सीमित है। वह भी अभिधा की भाँति समस्त भाषिक वाक्यों को अपना विषय बनाती है। वक्ता द्वारा प्रयुक्त वाक्य के आर्थ प्रतिरूपण तथा उससे समझे जा सकने वाले वाक्यार्थों में पारस्परिक अन्तर इतना अधिक होता है कि उसे पाटने के लिए व्यञ्जना को दैनन्दिन व्यवहार के सभी वाक्यों में मानना ही पड़ेगा।

इसी तरह मन्त्र, तन्त्र आदि पारलौकिक साधनों के लिए भी जिस भाषा का उपयोग होता है वह भाषा विशेष प्रकार की होती है। मन्त्र में वर्णों का विशिष्ट् विन्यास होता है जो प्रायः देवता के शब्दात्मक स्वरूप माने जाते हैं। योगदर्शन में ओंकार को परमेश्वर का वाचक शब्द माना गया है तथा उसको अर्थ भावनापूर्वक तैलधारवत् जपने की सलाह दी गई है[13]। मन्त्र का निर्दिष्ट प्रकार से जाप मन को नियन्त्रित करता है। मन के नियन्त्रित होने से आत्मस्वरूप के भासन में सहायता मिलती है। इसीलिए जप को सिद्धि कारक माना गया है[14]। तन्त्र शास्त्र भाषा में प्रयुक्त मातृका के अक्षरों को समस्त सृष्टि का शाब्दप्रतिनिधि मानता है। परात्रीशिका आदि ग्रन्थों तथा उसके भाष्यों में अक्षर क्रम से सृष्टि प्रक्रिया का विशद वर्णन प्राप्त होता है[15]। हमारी संस्कृति में वेद–गत शब्दों को परमेश्वर का साक्षात् स्वरूप[16] और उसकी प्राप्ति का उपाय दोनों जाना गया है। भर्तृहरि ने वेद तथा ब्रह्म में

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

अनेक समानताओं का वर्णन किया है[17]। वेदों के लिए जिन वेदाङ्गों का निर्माण हुआ उन्हीं से शुरू करके मानव समाज में विद्या की विभिन्न शाखाएँ प्रचलित हुई हैं[18]। प्रारम्भ में वेदाङ्ग वेदों को समझने के उद्यम के रूप में विकसित हुए थे। बाद में जब लौकिकज्ञान के व्याख्यान में इनका प्रयोग होने लगा तब इनका अभूतपूर्व विकास हुआ। ध्यातव्य है कि इन सभी विद्या स्थानों अपनी अपनी अलग अलग भाषिक प्रतिपादन की तकनीकें हैं।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है भाषा एक ऐसे गर्भनाल की तरह है जो जीवनपर्यन्त हमारे बाह्य तथा आन्तरिक व्यक्तित्व का निर्माण और पोषण करती है। उससे अलग होकर कुछ भी सोचा नहीं जा सकता क्योंकि कुछ भी सोचना भाषिक रचना (शब्दावली) में ही सम्भव होता है। हम उससे अलग हो ही नहीं सकते। उससे अलग होना जैसे अचेतन होना है[19]। महाराष्ट्र के मध्यकालीन सन्त तुकाराम ने अपने एक अभंग में शब्द की इस सर्वव्यापकता का बहुत सुन्दर वर्णन किया है–

आम्हा घरी धन शब्दांचीच रत्नें। शब्दांचीच शस्त्रें यत्न करूं।।
शब्दचि आमुच्या जीवांचे जीवन। शब्दें वाटूँ धन जन लोकां।।
तुका म्हणे पाहा शब्दचि हा देव। शब्दचि गौरव पूजा करूं।।

(हमारे घर में शब्दों के रत्नों की ही सम्पत्ति है। मेरे हथियार भी शब्दों के ही हैं जिनसे मैं विविध यत्न करता रहता हूँ। शब्द ही हमारे आत्मा को जिलाने वाला है। मैं लोगों को भी शब्द का ही वैभव बाँटता रहता हूँ। तुकाराम कहते हैं– देखो शब्द ही वह–परमात्मा–देवता है। मैं उसी का गुणगान, उसी की पूजा करता हूँ।)

उनके पहले के सिद्ध योगी गोरखनाथ का इस सम्बन्ध में कहना है–

सबदहिं ताला सबदहिं कूंची सबदहिं सबद जगाया।
सबदहिं सबद सूँ परचा हुआ, सबदहिं सबद समाया।।

प्रश्न यह उठता है कि जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त हम जिससे अपने आपको घिरा हुआ पाते हैं, जो हमारी सारी चेष्टाओं का आधार है उस भाषिक तत्त्व का मूल कहाँ है? वह गर्भनाल जिसका एक सिरा हमसे जुड़ा है उसका दूसरा छोर किधर है? इस प्रश्न पर विचार करते हुए हम पाते हैं कि वाणी अपनी विभिन्न अवस्थाओं और रूपों के माध्यम से हमें आदि से लेकर अन्त तक परिव्याप्त करके स्थित है। भारतीय मनीषियों ने वेद के समय से ही भाषा सम्बन्धी इन प्रश्नों पर ऊहापोह पूर्वक मौलिक विचार प्रस्तुत किये हैं। इनके कुछ महत्त्वपूर्ण आयामों पर आगे चर्चा प्रस्तुत की जा रही है।

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

भाषा के स्तर

भारतीय विद्वानों की भाषिक चर्चाओं से जो बातें स्पष्ट होकर सामने आयी हैं उनमें से सबसे प्रमुख यह है कि भाषा ने सम्पूर्ण प्राणिजगत् को इस तरह अन्दर–बाहर व्याप्त कर रखा है कि उसे केवल बाह्य उच्चारित और सुनी गई (श्रुत) ध्वनियों (जिसे वे वैखरी कहते हैं) तक ही सीमित नहीं किया जा सकता।केवल सुनाई पड़ने वाली ध्वनियों को ही भाषा नहीं कहा जा सकता। यह कोई ऐसा तत्त्व है जो भौतिक रूप से मानवीय अस्तित्व के बाहर तो उपस्थित है ही, उसकी सत्ता इसके अन्दर भी है[20]। बल्कि यह कहें कि भाषा का बड़ा हिस्सा तो वस्तुतः अन्दर ही है तो असमीचीन न होगा। ऋग्वेद (1.164.45) में वाणी के चार पादों (अवस्थाओं) की चर्चा है। इनमें मनुष्य केवल चौथे पाद–वैखरी का उच्चारण करता है। शेष तीन पाद जो मानवीय अस्तित्व के अन्दर स्थित हैं, उनका तो सामान्य लोगों को भान तक नहीं होता[21]। सामान्य मनुष्य तो बाह्य दैनन्दिन व्यवहार को ध्वन्यात्मक भाषा से ही सिद्ध होता हुआ देखता है इसलिए वह उसी को भाषा मानता है। लेकिन भाषा का बाहरी उच्चरित रूप तो बस उसके आन्तरिक वैचारिक स्वरूप पर ध्वनियों का रंग चढ़ा कर बना दिया जाता है। नादात्मक भाषा तो केवल हमारे भाषिक सामर्थ्य (Competence) का निष्पादन मात्र (Performance) है। वस्तुतः बाहर सुनाई पड़ने वाले वाक्यों की सारी संघटना वक्ता के मानसिक स्तर पर पहले ही परिपूर्ण हो चुकी होती है। इस मनोगत भाषा को ही असली भाषा कहा जाना चाहिए। मानस अथवा बुद्धि के स्तर पर स्थित भाषा को मध्यमा वाणी का नाम दिया गया है। प्रश्न यह उठ सकता है कि जब भाषा बुद्धि के स्तर पर ही परिपूर्ण हो जाती है तो फिर ध्वनियों के रूप में उसका उच्चारण क्यों किया जाता है। इसका सीधा उत्तर यह है कि मानसिक भाषा को ध्वनियों का जामा इसलिए पहनाया जाता है ताकि वक्ता के मनोभाव श्रोता तक पहुँच सकें[22]। जब हम चिन्तन करते हैं और हमें उसे किसी को बताना नहीं होता है तो उस समय वैखरी के बिना भी हमारी भाषा अपना काम करती रहती है। इस तरह भाषा के श्रुत रूप के साथ एक अनसुना या अश्रुत रूप भी है, इस प्रकार का विवेक भारतीय शब्ददर्शन का आधारभूत विवेक है। भाषा के इन्हीं दोनों स्वरूपों को भर्तृहरि उपादान शब्द कहते हैं क्योंकि लोक में भाषिक व्यवहार हेतु शब्द तत्त्व के इन्हीं दो रूपों का उपयोग किया जाता है[23]।

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

द्वावुपादानशब्देषु शब्दौ शब्दविदो विदुः।
एको निमित्तं शब्दानामपरोऽर्थे प्रयुज्यते।।(वाक्यपदीय 1.44)

भाषा का परामानसिक स्वरूप

भाषा के ये दोनों रूप–उक्ति तथा विचार, व्यक्तिगत या सामाजिक वातावरण से सम्बद्ध हैं। भाषा के सामाजिक व्यवहार सम्बन्धी प्रयोजन प्रायः इन दोनों से पूरे हो जाते हैं। लेकिन भारतीय विचारकों का भाषिक चिन्तन यहीं नहीं रुकता है। पाश्चात्त्य भाषाविज्ञान प्रायः Lang-Parol अथवा Competence-Performance तक भाषा के दो रूपों के वर्णन के बाद कृतकृत्य हो जाता है। भारतीय भाषा तत्त्वज्ञ इस चर्चा को और भी आगे ले जाकर भाषा के निर्वैयक्तिक तथा सार्वभौम रूप को भी स्पष्ट करना चाहते हैं। वे हमें भाषा के उस साम्राज्य तक ले जाते हैं जहाँ हिन्दी, अंग्रेजी, चीनी आदि अलग–अलग भाषा–व्यक्तियों में दीख पड़ने वाले बाहरी भेद नहीं होते। जहाँ भाषा–मात्र भाषिक सामर्थ्य अथवा वक्ता की चैतन्यशक्ति के रूप में शेष रह जाती है। वे यह सिद्ध करते हैं कि भाषिक तत्त्व वह मूल है जिससे संसार की सारी भाषाएँ (अर्थात् पूर्वोक्त भाषा व्यक्तियाँ) उद्भूत होती हैं। वाच्य–वाचक रूपी सभी व्यवहारों के मूल में यही तत्त्व विद्यमान रहता है। वाणी का परम स्वरूप यही है जिसमें वक्ता, श्रोता तथा ज्ञान इत्यादि में कोई भेद नहीं रह जाता–

ग्रहीतृग्रहणग्राह्यमायापथपरिच्युताम्।
नमामः परमानन्दज्योतीरूपां सरस्वतीम्।।

–शृंगारप्रकाश

ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय की त्रिपुटी जिसमें विगलित हो जाती है वह भाषा का वास्तविक एकात्मक रूप है। लेकिन जागतिक व्यवहार की सुविधा के लिए भाषा अपने आपको भिन्न–भिन्न आकारों में विवर्तित करती हैं[24]। कभी वाचक (शब्द) के रूप में तो कभी वाच्य (अर्थ) के रूप में, कहीं अंग्रेजी–फ्रेंच के तौर पर तो कहीं हिन्दी–भोजपुरी के वेश में। इस तरह यह सिद्ध होता है कि भाषा (अथवा, शब्दतत्त्व) के दो रूप हैं– संवर्त तथा विवर्त। शब्द तत्त्व जब वाच्य–वाचक आदि भेदों से रहित अपने वास्तविक स्वरूप में होता है तब उसकी वह अवस्था संवर्त कहलाती है। यही शब्द का वास्तविक स्वरूप है। (अद्वैत वेदान्त के ढाँचे में) जिस प्रकार सभी वस्तुएँ अपने मूल रूप में ब्रह्म ही हैं इसी प्रकार भाषा भी अपने मूल रूप में ब्रह्म से भिन्न नहीं

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

है[25]। वैयाकरण तो एक कदम और आगे बढ़कर यह कहते हैं कि संसार का मूलतत्त्व जो भी है उसका स्वरूप शब्दात्मक ही है (शब्दतत्त्वं यदक्षरम्)। भाषा को इससे बड़ा स्थान नहीं दिया जा सकता था और कदाचित् किसी संस्कृति में दिया भी नहीं गया है। यही शब्द तत्त्व जब अपने एकात्मक स्वरूप से भ्रष्ट हुए बिना भिन्न भिन्न रूपों में आता है तो उसकी यह अवस्था विवर्त कही जाती है[26]।

वैदिक वाङ्मय तथा प्राचीन ऋषियों की रचनाओं से प्राप्त संकेतों के आधार पर आचार्य भर्तृहरि ने वाक्यपदीय ग्रन्थ में इस सिद्धान्त को पल्लवित–पुष्पित किया है। शब्द ब्रह्म तथा भाषा की अन्तःस्थता का यह सिद्धान्त भारतीय विचारसरणि के सर्वाधिक समालोचित सिद्धान्तों में से एक है। हमारी चर्चा भी मुख्य रूप से इसी पर केन्द्रित रहेगी कि किस प्रकार भाषा का जो स्वरूप हमारे दैनन्दिन व्यवहार में दिखाई देता है उसकी निर्मिति वस्तुतः हमारे मानस के स्तर पर विचारों के रूप में होती है। और भाषा यहीं तक सीमित नहीं है। विचारात्मक भाषा का भी मूल स्रोत कोई और तत्त्व है। यह मूल तत्त्व वाक् अथवा शब्द है जो केवल श्रव्य भाषा का ही नहीं बल्कि समस्त जगत् का भी कारण है जो हमारी और सबकी अन्तरात्मा में सन्निविष्ट है[27]। अन्तरात्मा में अवस्थित इसी शब्द से हमारा लौकिक व्यवहार भी होता है और इसी से मिल पाना हमारी इष्टतम उपलब्धि होती है[28]।

भारतीय शब्दचिन्तन के प्रमुख प्रमेय

शब्द की इस परिभाषा पर तो सब लोग एकमत हैं कि 'शब्द उसे कहा जाता है जिससे अर्थ की निष्पत्ति होती है[29]'। अब प्रश्न यह उठता है कि अर्थ का अभिधान करने वाले उस 'शब्द' का क्या स्वरूप है? क्या यह केवल भौतिक ध्वनि है अथवा ध्वनियों की सहायता से अभिव्यक्त होने वाला नाद से परे कोई और ही तत्त्व? साथ ही प्रश्न यह भी है कि इस शब्द से निकलने वाला जो अर्थ है उसका स्वरूप क्या है। क्या वह कोई भौतिक वस्तु है अथवा मानसिक सम्प्रत्यय? शब्द और अर्थ दोनों यदि मानस हैं तो इन दोनों में सम्बन्ध कौन सा है? इनके उत्तर देने के प्रयास में और भी आनुषङ्गिक प्रश्न उभरते हैं। शब्द दर्शन के इन आधारभूत प्रश्नों पर भारतीय चिन्तन परम्परा में पर्याप्त मतभेद हैं। दार्शनिकों ने इन विषयों में अनेक अवधारणाएँ प्रस्तुत की हैं जो उनकी प्रस्थानगत आवश्यकताओं और

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

विवशताओं से प्रभावित और प्रेरित हैं[30]। शब्द को लेकर विविध दार्शनिकों ने प्रायः वही अवधारणा सामने रखी है जो उनके दार्शनिक ढाँचे की मदद कर सके। इसीलिए बहुत बार ऐसा होता है कि एक दर्शन में जो बात मुख्य है वह अन्य दर्शन में गौण है। भर्तृहरि कहते हैं–

भिन्नं दर्शनमाश्रित्य व्यवहारोऽनुगम्यते।
तत्र यन्मुख्यमेकेषां तत्रान्येषां विपर्ययः।।(वा.प. 1.75)

केवल वैयाकरण हैं जिन्होंने किसी दार्शनिक पूर्वाग्रह की अपेक्षा किये बिना केवल सम्प्रेषण प्रक्रिया को दृष्टि में रखते हुए भाषा पर अपने विचार रखे हैं। इसका कारण यह है कि अन्य दार्शनिकों के लिए भाषा साधन है साध्य नहीं[31] वहीं वैयाकरणों के लिए भाषा का विश्लेषण केवल साधन ही नहीं बल्कि साध्य भी है। वस्तुमात्र के विश्लेषण का एकमात्र माध्यम भाषा है। साथ ही भाषा के विश्लेषण का भी माध्यम भाषा ही है। जिस भाषा के द्वारा वैयाकरण भाषा का अनुविधान एवं अन्वाख्यान करते हैं उसे हम भाषाविज्ञान की शब्दावली में पराभाषा अथवा मेटा–लैंग्वेज कह सकते हैं। इस पराभाषा के अन्तर्गत वे कोटियाँ सम्मिलित होती हैं जो केवल व्याकरण शास्त्र में विश्लेषण के लिए प्रयुक्त होती हैं। इसमें धातु, प्रातिपदिक तथा प्रत्यय इत्यादि सम्मिलित हैं। साधन तथा साध्य की एकरूपता होने के कारण वैयाकरणों को किसी दर्शनशास्त्रीय प्रागनुभविक सिद्धान्त के प्रति निष्ठावान् नहीं होना पड़ता। इस कारण भाषातत्त्व को लेकर वैयाकरणों द्वारा किया गया इस प्रकार का वैज्ञानिक चिन्तन भारतीय मनीषा की अपूर्व उपलब्धि है। इसकी महत्ता इससे भी स्पष्ट है कि आधुनिक विद्या स्थानों में भर्तृहरि के विचार विश्व स्तर पर आदर के विषय हैं। परम्परा तो भर्तृहरि को शब्दब्रह्मवेदी, सभी वेदान्तों के तत्त्वज्ञ, महाकवि, महाविद्वान् आदि मानती ही है[32]।

शब्द का वास्तविकस्वरूप (स्फोट)

शब्द वही नहीं है जिसका हम उच्चारण करते हैं अथवा जिसे हम सुनते हैं। मुख्य या वास्तविक शब्द तो कुछ और ही है। ध्वनि रूप शब्दों के उच्चारण करने और सुनने के पहले भी शब्द की सत्ता मानस में भाषिक सामर्थ्य के रूप में विद्यमान होती है। इसका हम स्वयं भी अनुभव कर सकते हैं। हम जब अपने मन में विचार करते हैं या जब खुद अपने से ही बातें करते हैं तो वह वाक्यात्मक ही तो होता है। हमें अपने भावों को जब दूसरों तक

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पहुँचाना होता है तब यही भाषिक सामर्थ्य अपने आपको वाचक तथा वाच्य दो रूपों में विभाजित कर लेता है। भर्तृहरि इस प्रक्रिया को अर्थ के रूप में विवर्तित होना कहते हैं (वा.प.1.1)। इसी के द्वारा सम्प्रेषण की प्रक्रिया सम्भव हो पाती है। इस मानसिक भाषा को ही वैयाकरणों ने शब्द कहा है। शब्द को मानसिक अथवा बुद्धिस्थ मानना उसे भौतिकता के धरातल से उठाकर नित्यता के सिंहासन पर बिठाना है। शब्द और अर्थ मानसिक होने के साथ–साथ अखण्ड भी हैं। इसका तात्पर्य यह है कि भाषा का वास्तविक रूप वाक्य एवं वाक्यार्थ में प्रतिष्ठित है। पद हों अथवा पदार्थ इनका स्वरूप अनिश्चित है। जब हम एक बार वाक्यार्थ को समझ लेते हैं तो पद अथवा पदार्थ की निवृत्ति हो जाया करती है। इसलिए पद या पदार्थ को भाषा का वास्तविक घटक नहीं कहा जा सकता है। वाक्य पदों से संरचित न होकर अखण्ड तथा निरवयव होता है[33]। शब्द की सत्ता को बाह्य तथा भौतिक न मानकर आन्तरिक एवं मानसिक मानने का मतलब है शब्द को विचार अथवा सामर्थ्य के रूप में ग्रहण करना[34]। इस लिहाज से ध्वनि तथा शब्द में एक बड़ा अन्तर है। भौतिक ध्वनियाँ अभौतिक शब्द की अभिव्यञ्जक हैं (स्फोटः शब्दः ध्वनिस्तस्य व्यायाम उपजायते–संग्रह) तथा शब्द उन ध्वनियों से अभिव्यक्त होने वाला मानस तत्त्व है। अर्थात् इन दोनों में अभिव्यङ्ग्य अभिव्यञ्जक सम्बन्ध् है। शब्द की अभिव्यञ्जना श्रोता तथा वक्ता दोनों की बुद्धि के स्तर पर निर्भर होती है[35]।

वस्तुतः शब्द हमारी भाषिक क्षमता (भर्तृहरि इसे शब्दभावना कहते हैं। वा.प. 1.130) का नाम है। यह भाषिक सामर्थ्य हमारे मस्तिष्क में जन्म से ही (अथवा, उससे भी पहले से) उपस्थित होता है। बाहरी सूचनाओं अथवा संकेतग्रह इत्यादि से केवल उसका परिष्कार हो सकता है उत्पादन नहीं। वक्ता के द्वारा बोली गयी ध्वनियों को जब श्रोता सुनता है तब उसके मस्तिष्क में विद्यमान निराकार शब्द तत्त्व उन ध्वनियों के रंग में रँग कर प्रकट हो जाता है। इस प्रकार निराकार शब्द को ध्वनियों का परिधान मिल जाता है। शब्द का यह रूप उसका वाचक (अर्थप्रद इकाई) स्वरूप होता है और उसी से वाच्य (अर्थ) ग्रहण किया जाता है। असल में, वाचक (शब्द) तथा वाच्य (अर्थ) एक ही शब्दतत्त्व के दो रूप हैं। अथवा यह कह लें कि उसके दो आयाम हैं। इस कारण दोनों की स्थिति अलग अलग नहीं हो सकती। दोनों बुद्धिस्थ ही नहीं हैं बल्कि दोनों एक ही बुद्धि तत्त्व (जिसे शब्द

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

भी कहा जा सकता है,) की आवश्यकतानुसार दो भूमिकाएँ हैं। वाक्यपदीय के वाक्यकाण्ड में भर्तृहरि का स्पष्ट कथन है–

एकस्यैवात्मनोभेदौ शब्दार्थावपृथक्स्थितौ।(2.31)

शब्द तत्त्व अपने आपको इन दो रूपों में इसलिए सामने ले आता है ताकि संसार में भाषिक व्यवहार संभव हो सके (विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रियाजगतो यतः)[36]। वाक् तत्त्व का जो वाचक स्वरूप है, उसे ही वैयाकरणों ने वास्तविक शब्द माना है, ध्वनियों को नहीं। उस वाचक शब्द के लिए उन्होंने एक नया नाम गढ़ा है, वह है– 'स्फोट'[37]। एक नया नाम 'स्फोट' रखने से लाभ यह होता है कि शब्द, ध्वनियों से भिन्न, मानसिक तथा अर्थ का वास्तविक वाचक है, यह स्पष्ट हो जाता है–

1. स्फुट्यते ध्वनिभिः इति स्फोटः = जो ध्वनियों द्वारा अभिव्यञ्जित होता है।
2. स्फुटति अर्थः अस्माद् इति स्फोटः = जिससे अर्थ निकलता है, अर्थात् वाचक शब्द।

उपर्युक्त दोनों व्युत्पत्तियाँ शाब्द बोध की प्रक्रिया के दो चरणों के रूप में भी देखी जा सकती हैं। पहले चरण में बुद्धि में स्थित शब्दतत्त्व ध्वनियों द्वारा अभिव्यक्त होता है, फिर उसके बाद दूसरे चरण में वह अर्थ को प्रकट करता है। दोनों भूमिकाओं के कारण उसके लिए स्फोट शब्द का प्रयोग उचित है। इसी सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए महाभाष्य में शब्द के लिए प्रस्तुत परिभाषा (येनोच्चारितेन सास्नालाङ्गूलककुदखुरविषाण्यर्थ–सम्प्रत्ययोभवति स शब्दः) में स्थित उच्चारितेन शब्द का अर्थ कैयट ने अभिव्यक्तेन किया है।

स्फोट–सिद्धान्त का सर्वप्रथम उल्लेख महाभाष्यकार पतञ्जलि में मिलता है। यद्यपि नागेशभट्ट के अनुसार यह सिद्धान्त पाणिनि से पूर्ववर्ती स्फोटायन नामक ऋषि के द्वारा प्रतिपादित है।[38] ध्यातव्य है कि पाणिनि ने अपने सूत्रों में स्फोटायन का उल्लेख किया है[39]। इस सिद्धान्त का पूर्ण विकास भर्तृहरि के वाक्यपदीय में दिखाई देता है। बाद की शताब्दियों में विपक्षियों के खण्डनों तथा समर्थकों के प्रत्युत्तरों से यह सिद्धान्त और अधिक स्पष्ट होकर हमारे सामने आता है। मण्डन मिश्र (स्फोटसिद्धि), शेष कृष्ण (स्फोटतत्त्वनिरूपण), भट्टोजि दीक्षित (वैयाकरणसिद्धान्तकारिका), कौण्डभट्ट (स्फोट निर्णय) तथा नागेशभट्ट (स्फोटवाद) आदि विद्वानों के माध्यम से स्फोट सिद्धान्त भारतीय भाषादर्शन के प्रमुख सिद्धान्त के रूप में व्यवस्थित हुआ है।

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

यहाँ प्रश्न यह उठता है कि शब्द के स्वरूप को मानसिक क्यों माना जाए? सीधे–सीधे ध्वनियों को ही अर्थ का वाहक क्यों न मान लिया जाये। हम देखते हैं कि वक्ता जब ध्वनियों का उच्चारण करता है तो श्रोता को अर्थ का ग्रहण होता है। इसके विपरीत, जब ध्वनि का उच्चारण नहीं किया जाता तब अर्थ का ग्रहण भी नहीं होता। इस तरह ध्वनि के उच्चारण तथा अर्थ के बोध में एक तरह के अन्वय–व्यतिरेक[40] से कार्य कारण सम्बन्ध सिद्ध होता है। इसलिए ध्वनियों को ही अर्थ का वाचक मान लेना चाहिए। ऐसा मानने पर ध्वनियों को ही शब्द माना जा सकेगा। इससे लाभ यह होगा कि स्फोट जैसे अभौतिक तत्त्व की क्लिष्ट कल्पना नहीं करनी पड़ेगी। यह मत मुख्य रूप से नैयायिकों का है। वे ध्वनियों को ही वाचक समझते हैं और उन्हें ही शब्द कहते हैं[41]। वैयाकरण उनकी इस मान्यता में दोष दिखाते हुए उसका खण्डन करते हैं।

उनके अनुसार ध्वनियाँ अर्थ का बोध कराने में समर्थ नहीं हो सकतीं इसलिए इन्हें शब्द नहीं कहा जा सकता। इसमें सबसे बड़ा कारण यह है कि ध्वनियाँ क्षणभंगुर होती हैं। यह एक सार्वजनीन अनुभव है। उच्चारण के क्रम में अनेक ध्वनियाँ दूसरे या तीसरे क्षण नष्ट हो जाती हैं अतः उनकी एक इकाई बनना सम्भव नहीं। नष्ट तथा अन्तिम विद्यमान ध्वनियों का कोई संघात नहीं बन सकता। उदाहरण के लिए कोई वक्ता 'कमल' बोलते हुए 'क्+अ+म् +अ+ल्+अ', इन ध्वनियों का उच्चारण करता है। यह उच्चारण क्रमिक ही होता है। कारण यह है कि ध्वनियों का उच्चारण एक साथ नहीं किया जा सकता। इस क्रिया में बाद बाद वाली ध्वनियों के उच्चारण के समय पहले पहले वाली ध्वनियाँ नष्ट होती जाती हैं। अन्तिम 'अ' ध्वनि के साथ उन पूर्ववर्ती नष्ट ध्वनियों का समुदाय नहीं बन सकता क्योंकि उपस्थित के साथ अनुपस्थितों का मेल ही असम्भव है। इस प्रकार एक इकाई के रूप में ग्रहण न हो पाने के कारण ध्वनियाँ शब्द नहीं बन सकतीं। एक इकाई में गृहीत न हो पाने के कारण उनसे एकात्मक अर्थ का वाचन भी नहीं हो पाएगा। फलतः उनको वाचक मानना अतार्किक है। इस समस्या से बचने के लिए नैयायिक एक युक्ति निकालते हैं। उनके अनुसार पूर्ववर्ती ध्वनियाँ चाहे नष्ट हो जाती हैं लेकिन नाश के साथ साथ श्रोता की बुद्धि में संस्कार छोड़ जाती हैं। अगर यह संस्कार न होता तो हम उनका स्मरण भी नहीं कर सकते थे। पूर्व–पूर्व ध्वनियों के ये संस्कार तथा

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

भी कहा जा सकता है,) की आवश्यकतानुसार दो भूमिकाएँ हैं। वाक्यपदीय के वाक्यकाण्ड में भर्तृहरि का स्पष्ट कथन है–

एकस्यैवात्मनोभेदौ शब्दार्थावपृथक्स्थितौ।(2.31)

शब्द तत्त्व अपने आपको इन दो रूपों में इसलिए सामने ले आता है ताकि संसार में भाषिक व्यवहार संभव हो सके (विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रियाजगतो यतः)[36]। वाक् तत्त्व का जो वाचक स्वरूप है, उसे ही वैयाकरणों ने वास्तविक शब्द माना है, ध्वनियों को नहीं। उस वाचक शब्द के लिए उन्होंने एक नया नाम गढ़ा है, वह है– 'स्फोट'[37]। एक नया नाम 'स्फोट' रखने से लाभ यह होता है कि शब्द, ध्वनियों से भिन्न, मानसिक तथा अर्थ का वास्तविक वाचक है, यह स्पष्ट हो जाता है–

1. स्फुट्यते ध्वनिभिः इति स्फोटः = जो ध्वनियों द्वारा अभिव्यञ्जित होता है।
2. स्फुटति अर्थः अस्माद् इति स्फोटः = जिससे अर्थ निकलता है, अर्थात् वाचक शब्द।

उपर्युक्त दोनों व्युत्पत्तियाँ शाब्द बोध की प्रक्रिया के दो चरणों के रूप में भी देखी जा सकती हैं। पहले चरण में बुद्धि में स्थित शब्दतत्त्व ध्वनियों द्वारा अभिव्यक्त होता है, फिर उसके बाद दूसरे चरण में वह अर्थ को प्रकट करता है। दोनों भूमिकाओं के कारण उसके लिए स्फोट शब्द का प्रयोग उचित है। इसी सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए महाभाष्य में शब्द के लिए प्रस्तुत परिभाषा (येनोच्चारितेन सास्नालाङ्गूलककुदखुरविषाण्यर्थ–सम्प्रत्ययोभवति स शब्दः) में स्थित उच्चारितेन शब्द का अर्थ कैयट ने अभिव्यक्तेन किया है।

स्फोट–सिद्धान्त का सर्वप्रथम उल्लेख महाभाष्यकार पतञ्जलि में मिलता है। यद्यपि नागेशभट्ट के अनुसार यह सिद्धान्त पाणिनि से पूर्ववर्ती स्फोटायन नामक ऋषि के द्वारा प्रतिपादित है।[38] ध्यातव्य है कि पाणिनि ने अपने सूत्रों में स्फोटायन का उल्लेख किया है[39]। इस सिद्धान्त का पूर्ण विकास भर्तृहरि के वाक्यपदीय में दिखाई देता है। बाद की शताब्दियों में विपक्षियों के खण्डनों तथा समर्थकों के प्रत्युत्तरों से यह सिद्धान्त और अधिक स्पष्ट होकर हमारे सामने आता है। मण्डन मिश्र (स्फोटसिद्धि), शेष कृष्ण (स्फोटतत्त्वनिरूपण), भट्टोजि दीक्षित (वैयाकरणसिद्धान्तकारिका), कौण्डभट्ट (स्फोट निर्णय) तथा नागेशभट्ट (स्फोटवाद) आदि विद्वानों के माध्यम से स्फोट सिद्धान्त भारतीय भाषादर्शन के प्रमुख सिद्धान्त के रूप में व्यवस्थित हुआ है।

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

यहाँ प्रश्न यह उठता है कि शब्द के स्वरूप को मानसिक क्यों माना जाए? सीधे–सीधे ध्वनियों को ही अर्थ का वाहक क्यों न मान लिया जाये। हम देखते हैं कि वक्ता जब ध्वनियों का उच्चारण करता है तो श्रोता को अर्थ का ग्रहण होता है। इसके विपरीत, जब ध्वनि का उच्चारण नहीं किया जाता तब अर्थ का ग्रहण भी नहीं होता। इस तरह ध्वनि के उच्चारण तथा अर्थ के बोध में एक तरह के अन्वय–व्यतिरेक[40] से कार्य कारण सम्बन्ध सिद्ध होता है। इसलिए ध्वनियों को ही अर्थ का वाचक मान लेना चाहिए। ऐसा मानने पर ध्वनियों को ही शब्द माना जा सकेगा। इससे लाभ यह होगा कि स्फोट जैसे अभौतिक तत्त्व की क्लिष्ट कल्पना नहीं करनी पड़ेगी। यह मत मुख्य रूप से नैयायिकों का है। वे ध्वनियों को ही वाचक समझते हैं और उन्हें ही शब्द कहते हैं[41]। वैयाकरण उनकी इस मान्यता में दोष दिखाते हुए उसका खण्डन करते हैं।

उनके अनुसार ध्वनियाँ अर्थ का बोध कराने में समर्थ नहीं हो सकतीं इसलिए इन्हें शब्द नहीं कहा जा सकता। इसमें सबसे बड़ा कारण यह है कि ध्वनियाँ क्षणभंगुर होती हैं। यह एक सार्वजनीन अनुभव है। उच्चारण के क्रम में अनेक ध्वनियाँ दूसरे या तीसरे क्षण नष्ट हो जाती हैं अतः उनकी एक इकाई बनना सम्भव नहीं। नष्ट तथा अन्तिम विद्यमान ध्वनियों का कोई संघात नहीं बन सकता। उदाहरण के लिए कोई वक्ता 'कमल' बोलते हुए 'क्+अ+म् +अ+ल्+अ', इन ध्वनियों का उच्चारण करता है। यह उच्चारण क्रमिक ही होता है। कारण यह है कि ध्वनियों का उच्चारण एक साथ नहीं किया जा सकता। इस क्रिया में बाद बाद वाली ध्वनियों के उच्चारण के समय पहले पहले वाली ध्वनियाँ नष्ट होती जाती हैं। अन्तिम 'अ' ध्वनि के साथ उन पूर्ववर्ती नष्ट ध्वनियों का समुदाय नहीं बन सकता क्योंकि उपस्थित के साथ अनुपस्थितों का मेल ही असम्भव है। इस प्रकार एक इकाई के रूप में ग्रहण न हो पाने के कारण ध्वनियाँ शब्द नहीं बन सकतीं। एक इकाई में गृहीत न हो पाने के कारण उनसे एकात्मक अर्थ का वाचन भी नहीं हो पाएगा। फलतः उनको वाचक मानना अतार्किक है। इस समस्या से बचने के लिए नैयायिक एक युक्ति निकालते हैं। उनके अनुसार पूर्ववर्ती ध्वनियाँ चाहे नष्ट हो जाती हैं लेकिन नाश के साथ साथ श्रोता की बुद्धि में संस्कार छोड़ जाती हैं। अगर यह संस्कार न होता तो हम उनका स्मरण भी नहीं कर सकते थे। पूर्व–पूर्व ध्वनियों के ये संस्कार तथा

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

अन्तिम ध्वनि का अनुभव मिलकर एक इकाई का निर्माण करते हैं। इस इकाई को अर्थ का वाचक माना जा सकता है। इसलिए हमें ध्वनि को ही वाचक मानना चाहिए। नैयायिकों की इस युक्ति में वैयाकरणों ने एक बड़ा दोष दिखाया है। उनके अनुसार यदि संस्कारों को ही वाचक माना जाए तो एक बड़ी समस्या रस–सर, नदी–दीन इत्यादि शब्द युग्मों में आयेगी जिनमें ध्वनियाँ यद्यपि व्युत्क्रम हैं लेकिन समान हैं। उन समान ध्वनियों से उत्पन्न होने वाले संस्कार भी समान होंगे। समान संस्कार से घटित शब्दों का अर्थ एक ही मानना पड़ जाएगा। इन शब्दों में विद्यमान ध्वनियों का संस्कार (उनके समान होने के कारण) एक जैसा ही होगा। इस समस्या से भी बचने के लिए नैयायिक यदि यह कहें कि ध्वनियों का उपर्युक्त संस्कार भी एक क्रम विशेष के साथ होता है तो इस पर वैयाकरणों का उत्तर होगा कि संस्कारों में किसी प्रकार का क्रम होता है यह बात बुद्धि सापेक्ष नहीं है, क्योंकि ऐसा अनुभव नहीं होता। कारण यह है कि हमारी बुद्धि में पहले से वर्णों के संस्कार विद्यमान होते हैं। नये सुने गये वर्णों के संस्कार उनसे भिन्न नहीं होते। बल्कि उसी में समाहित हो जाते हैं। अगर हमारे द्वारा अभी सुने गये क–वर्ण का संस्कार मन में पहले से विद्यमान क–वर्ण के संस्कार से भिन्न होता तो हमें प्रतीति इस प्रकार की होती कि मैंने दूसरा या तीसरा क–वर्ण सुना है। जबकि हमारे प्रतीत होता है कि हमने उसी क को दोबारा या तीसरी बार सुना है। इस प्रतीति को प्रत्यभिज्ञात्मक प्रतीति कहते हैं। मन में पहले से विद्यमान वर्ण संस्कार के क्रम में पौर्वापर्य का निर्धारण करने का कोई निश्चायक तत्त्व हमारे पास नहीं है।

इस तरह ध्वनियाँ एक इकाई के रूप में उपस्थित नहीं हो सकती इसलिए वे वाचक भी नहीं हैं। ध्वनियों को सार्थक मानने में एक समस्या और भी है। वह यह है कि सक्रम ध्वनियों द्वारा एक क्रम रहित अखण्ड अर्थ नहीं पाया जा सकता। हमारा अनुभव है कि हम अर्थ का साक्षात्कार एक इकाई में ही करते हैं। ध्वनियाँ कभी भी एक साथ उच्चरित नहीं होती हैं। सक्रम ध्वनियाँ अक्रम अर्थ को देने लगें तो इसमें "कारणगुणप्रक्रमन्याय"[42] का व्याघात भी होगा।

सम्प्रेषण के एक छोर पर तो सक्रम तत्त्व = ध्वनियाँ है जबकि दूसरे छोर पर अक्रम तत्त्व = अर्थ है। इस दोनों पर्याप्त भिन्न तत्त्वों के बीच में जो एक रिक्ति है उसके समाधान के लिए एक ऐसे मानसिक तत्त्व की

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

आवश्यकता है जो ध्वनियों को एकात्मक बना सके। ध्वनियाँ स्वतः एकात्मक नहीं हो सकतीं। वह एक मानसिक तत्त्व स्वयं ध्वनियों का परिधान पहनकर अपनी एकात्मकता के बल पर उन्हें एक बनाता है। इसी प्रकार अर्थ का वाचन हो पाता है। इस सम्बन्ध में को.अ.सुब्रह्मण्य अय्यर का कथन ध्यान देने योग्य है– "स्फोट सिद्धान्त अर्थज्ञान की समस्या के समाधान के रूप में निकला था। समस्या यह थी कि जिन ध्वनियों को कालक्रम में बोला जाता है उनसे अर्थ को समझने की व्याख्या कैसे की जाए। चूँकि वे एक कालिक नहीं होतीं तथा उनका अस्तित्व सम्भव नहीं है अतः अर्थ का ग्रहण कराने में वे सहयोग नहीं कर सकतीं। स्फोट का सिद्धान्त इस समस्या का वैयाकरणों द्वारा (प्रस्तुत) समाधान है। (अय्यर पृ.171)"

इस प्रकार बात स्पष्ट होती है कि ध्वनियाँ शब्द तत्त्व को प्रकाशित करती हैं फिर वही शब्द तत्त्व स्फोट रूप में आकर अर्थ का वाचक बनता है। ध्वनियाँ मानसिक स्तर पर ही इकाई को प्राप्त होती हैं। ध्वनियों के संस्कार निरवयव शब्द तत्त्व को स्फोट रूप में अभिव्यक्त करते हैं; फिर स्फोट भी क्रमिक तथा क्षणभंगुर ध्वनियों को एकात्मक बनाता है। इस प्रकार ध्वनि और स्फोट दोनों एक दूसरे से उपकृत होते हैं।

इस तरह स्पष्ट होता है कि ध्वनियाँ शब्द तत्त्व को प्रकाशित करती हैं फिर स्फोट रूप में आया हुआ शब्द तत्त्व अर्थ का बोध कराता है। अब यहाँ एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न और उठता है। जब ध्वनियों का ऊपर बताई गई प्रक्रिया के अनुसार एकीकरण हो जाता है तो उन्हीं ध्वनियों को हम अर्थ का वाचक क्यों न मान लें? ऐसा करने से हम अभी भी स्फोट नामक किसी अतिरिक्त तत्त्व की कल्पना से बच जाएंगे। लेकिन मानसिक स्तर पर एकीभूत ध्वनियों को हम फिर से वाचक नहीं मान सकते ऐसे ही जैसे ध्वनियों को वाचक नहीं मानते। कारण यह है कि ध्वनियों का वह एकीभूत संस्कारात्मक रूप स्फोट को अभिव्यक्त करने में कृतकार्य हो जाता है। उन्हीं ध्वनियों को दूसरे (अर्थवाचन रूपी) कार्य में नियुक्त करना न्याय्य नहीं होगा। जैसे किसी अर्थविशेष के वाचन के लिए वक्ता द्वारा प्रयुक्त ध्वनियाँ उसी अर्थ के बोध के प्रति कारण होती हैं। उनसे किसी अन्य अर्थ का बोध नहीं हो सकता। अर्थात् एक कार्य के लिए प्रयुक्त प्रयत्न उस कार्य में कृतकृत्य होता हुआ दूसरे कार्य को भी एक ही साथ सम्पादित नहीं कर सकता[43]। इसी प्रकार स्फोट को व्यक्त करने वाले कार्य के लिए प्रयुक्त ध्वनियों से अर्थ–वाचन रूप दूसरा प्रयोजन भी सिद्ध कर लिया जाए, यह सम्भव नहीं है[44]।

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

शब्द की वाचकता में ध्वनि की भूमिका

चूँकि ध्वनियाँ वाचक नहीं हैं अतः उन्हें शब्द न कहकर उनकी अपेक्षा किसी ऐसे तत्त्व को शब्द कहना चाहिए जो उनसे सम्बन्धित तो हों लेकिन स्वयं में क्षणभङ्गुर, सक्रम और विभाज्य न हों। वैयाकरणों ने शब्द के रूप में स्फोट को एक मानसिक तत्त्व के तौर पर प्रतिष्ठापित किया है जो ध्वनियों के द्वारा अभिव्यक्त होता है तथा उनके रूप से आच्छादित होकर एक इकाई में प्रकट होता है। इससे सम्प्रेषण का कार्य तो सिद्ध हो जाता लेकिन साथ एक विशेष प्रकार का अपमिश्रण प्रकट होता है। वह यह कि ध्वनियों के दर्पण में संक्रान्त होने के कारण शब्द पर ध्वनियों की सारी विशेषताएँ आरोपित हो जाती हैं। जिस तरह हमें ज्ञान का भान शुद्ध रूप से नहीं हो पाता बल्कि वह अपने विषय से मिश्रित होकर ही अनुभव में आता है उसी प्रकार हम ध्वनियों से अमिश्रित अवस्था में शब्द का अनुभव भी नहीं कर पाते हैं। भर्तृहरि के अनुसार यह अपमिश्रण सुनिश्चित है और शायद स्पृहणीय भी क्योंकि यदि ऐसा न हो तो हम उसका व्यवहार में प्रयोग ही न कर पायें[45]। यह अपमिश्रण व्यवहार के लिए ही होता है। यही कारण है कि हम प्रायः शब्द (स्फोट) तथा ध्वनियों में भेद नहीं कर पाते और ध्वनियों को ही शब्द मान बैठते हैं। हमारे अन्दर जो भाषिक क्षमता है वस्तुतः वही भाषा है। वह क्रमरहित तथा अविभाज्य है। उसमें सभी शब्दों तथा सभी अर्थों का रूप धारण कर लेने की क्षमता है। दूसरे शब्दों में, उस तत्त्व में सभी प्रकार के अर्थों को कहने तथा सभी शब्दों द्वारा कहे जाने जाने की योग्यता विद्यमान है। फिर भी सम्प्रेषण की प्रक्रिया में एक समय में हम किसी एक विशेष अर्थ को ही सम्प्रेषित करना चाहते हैं, सारे अर्थों को नहीं। सर्वसमर्थ शब्द तत्त्व एक सीमित अर्थ को प्रकट करे, यह बात सम्प्रेषण की अनिवार्य आवश्यकता होती है। ध्यातव्य है कि शब्द तत्त्व स्वयं में वाचक नहीं है। वह तो वाचक–वाच्य से अतीत कोई और ही तत्त्व है। उसे स्फोट अथवा वाचक की अवस्था तक ला खड़ा करने का यह कार्य ध्वनियाँ करती हैं। ध्वनियों की पोशाक पहनकर प्रकट हुआ शब्द तत्त्व स्फोट है और उसी से अर्थ निकलता है इसलिए वही शब्द है।

शब्द तत्त्व अथवा भाषिक सामर्थ्य वक्ता तथा श्रोता दोनों के अन्तर में स्वभावतः विद्यमान होता है। साथ ही सम्भाषण के दौरान उन दोनों में एक गहरी समझ (मानसिक सामानाधिकरण्य) भी होती है। सम्प्रेषण की क्रिया में

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

प्रवृत्त होता हुआ वक्ता अपने मानसिक शब्द का परामर्श करता है। वक्ता के स्तर पर शब्द तत्त्व का अर्थ वाला आयाम पहले परामृष्ट होता है। वह एक अर्थविशेष का चयन करके उसकी अभिव्यञ्जना के अनुकूल ध्वनियों का उच्चारण करता है। ध्वनियाँ श्रोता के कानों द्वारा गृहीत होकर बुद्धिस्थ शब्द का संस्कार करती हैं। इस संस्कार का तात्पर्य यह है कि वे स्फोट को अपने रंग में रँग कर श्रोता के समक्ष प्रकट करती हैं–

वितर्कितः पुरा बुद्ध्या क्वचिदर्थे निवेशितः।
करणेभ्यो विवृत्तेन ध्वनिना सोऽनुगृह्यते।। (वा.प. 1.47)

हमारी भाषिक क्षमता जो हमेशा से हमारे मन–मस्तिष्क में विद्यमान होती है, जब उच्चरित ध्वनियों के द्वारा उसकी अभिव्यक्ति होती है तो उसे ही स्फोट कहा जाता है। इसी अभिव्यक्त स्फोट से अर्थ प्राप्त होता है इसलिए उसे ही वास्तविक शब्द भी कहा जाता है। स्फोट नीरूप है। उसका प्रकाशन अभिव्यञ्जक ध्वनियों के माध्यम से होता है इस कारण स्फोट (=शब्द) ध्वनियों के रूप में ही प्रकट हो पाता है। इस क्रम में ध्वनियाँ स्फोट को इस तरह आच्छादित कर लेती हैं कि हमें ध्वनियों तथा शब्द (=स्फोट) के बीच भेद स्पष्ट नहीं हो पाता। भर्तृहरि वाक्यपदीय में अनेक उदाहरणों द्वारा हमें इस प्रक्रिया की स्वाभाविकता को समझाते हैं। उनके अनुसार प्रकाश्य वस्तुएँ प्रकाशकों के रूप, गुण आदि सभी धर्मों का स्वभावतः अनुगमन करती हैं[46]। हम ध्वनियों के सभी गुणों को वैसे ही शब्द पर आरोपित कर लेते हैं जैसे पानी में होती हुई हलचल को पानी में पड़े हुए चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब में होता हुआ मान लेते हैं[47]। इस दृष्टान्त में ध्वनियाँ पानी हैं, आकाशस्थित चन्द्रमा शब्दतत्त्व है जबकि पानी में प्रतिबिम्बित चन्द्रमा स्फोट अथवा वाचक शब्द है।

इस प्रकार क्रमवान् तथा क्षणभङ्गुर होने पर भी ध्वनियाँ मानस में स्थित शब्दतत्त्व की सहायता से एकात्मकता को प्राप्त करके एक इकाई में आ पाती हैं। इसके साथ ही वे सभी अर्थों के वाचन में समर्थ शब्द तत्त्व को एक अभीष्ट एवं विशिष्ट अर्थ को देने के लिए तैयार (सीमित या जागृत) करती हैं। शब्द (स्फोट) जिन ध्वनियों के रूप में प्रकट होता है श्रोता उन ध्वनियों का पहले से ही किसी अर्थ के साथ संकेत ग्रहण किये हुए रहता है। यह संकेत ग्रहण वाच्य–वाचक रूप होता है। इस कारण जब ध्वनियों से परिगृहीत होकर स्फोट प्रकट होता है तो अर्थ का तुरन्त ग्रहण हो जाता है।

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

स्फोट के प्रकट या जागृत होने का तात्पर्य है ध्वनियों के स्वरूप का बुद्धि के साथ एकाकार होना। स्फोट का ध्वनियों के रूप में प्रकट होकर इस एकाकार रूप में गृहीत होना शब्द का सबसे पहला अर्थ होता है[48]। ध्वनियों का एकीकृत रूप में बुद्धि का विषय बन जाने के बिना बाद वाले (जाति, व्यक्ति आदि) अर्थों का भान होना असम्भव है[49]। वैयाकरणों ने शब्द के इस प्राथमिक अर्थ पर जोर देते हुए इसे हर एक शब्द का सुनिश्चित अर्थ माना है। कल्पना कीजिए अगर किसी ने कोई ऐसा शब्द बोला जिसका अर्थ हमें पता नहीं है फिर भी उसकी बोली हुई ध्वनि शृङ्खला को हम शब्द कहते हैं, ऐसा क्यों है। जब उसका अर्थ ही नहीं तो वह शब्द कैसे है? वैयाकरण समझाते हैं कि हम बोली हुई चीज सुनते हैं तो मस्तिष्क में विद्यमान ध्वनियाँ एकीकृत रूप में प्रकट तो होती ही हैं। उसका यह अर्थ तो सभी को समझ में आता ही है। इसी कारण किसी शब्द का अर्थ नहीं आने पर भी उसे शब्द कहा ही जाता है। कोई और अर्थ आये न आये यह अर्थ तो आता ही है–

प्रतिपत्तुर्भवत्यर्थे ज्ञाने वा संशयः क्वचित्।
स्वरूपेषूपलब्धेषु व्यभिचारो न विद्यते।। (वा.प., 3.3.2)

वाच्य अर्थों का शब्द के स्वरूप के साथ एकात्मकता हमें पता होती है[50]। यह एकात्मकता संकेतग्रह की प्रकृति है। इसलिए जैसे ही शब्द के स्वरूप का अवबोध होता है वैसे ही हमें अर्थग्रहण हो जाता है। संक्षेप में यही भाषिक सम्प्रेषण तथा अवबोध की प्रक्रिया है।

ध्वनियों की अपेक्षा किसी अन्य तत्त्व (स्फोट) को वाचक सिद्ध करते ही वैयाकरण लोग नैयायिक आदि अन्यान्य विद्वानों की तीखी आलोचना के विषय बन जाते हैं। प्रतिपक्षियों ने ध्वनि के अतिरिक्त एक नये स्फोट जैसे तत्त्व का स्वीकार करने को कल्पना गौरव कहा है। भर्तृहरि ने ब्रह्मकाण्ड में इन आक्षेपों का सुन्दर रीति से उत्तर दिया है।

प्रतिपक्षी का प्रमुख प्रश्न स्फोट तथा ध्वनि के बीच में सम्बन्ध के बारे में है। उसके अनुसार यदि स्फोट ध्वनियों से भिन्न है तो वह हमारे सामने हमेशा ध्वनियों के रूप में ही क्यों प्रकट होता है। यदि स्फोट की वस्तुतः सत्ता होती तो वह ध्वनियों से अमिश्रित रूप में भी प्रकट होता। भर्तृहरि इसका उत्तर देते हैं कि ऐसा इसलिए होता है कि स्फोट नीरूप है तथा वह ध्वनियों के माध्यम से ही प्रकाशित होता है। जिस प्रकार कोई वस्तु जब प्रतिबिम्बित होती है तो वह प्रतिबिम्बक द्रव्य अथवा सामग्री के आकार

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

और क्रिया आदि विशेषताओं का अनुगमन करने लगती है। ठीक वैसे ही ध्वनियों के द्वारा अभिव्यक्त होने के कारण ध्वनियों के क्रमवत्ता आदि गुण शब्द के रूप में ग्रहण कर लिये जाते हैं–

स्फोटस्याभिन्नकालस्य ध्वनिकालानुपातिनः।
ग्रहणोपाधिभेदेन बुद्धिभेदं प्रचक्षते।।(वा.प.1.75)

दूसरा प्रश्न यह है कि किसी शब्द के अर्थ को बताने के लिए अनेक ध्वनियों का उच्चारण किया जाता है। इन ध्वनियों में से हम किस ध्वनि को स्फोट का व्यञ्जक मानेंगे? इन सक्रम ध्वनियों में से कौन सी ध्वनि अखण्ड स्फोट को व्यक्त करती है। अगर यह कहा जाए कि पहली ध्वनि सारे स्फोट को व्यञ्जित कर देती है तो उसके बाद उच्चरित होने वाली बाकी ध्वनियाँ निष्प्रयोजन होने लगेंगी। और इस अनिष्ट से बचने के लिए अगर यह कहा जाए कि सभी ध्वनियाँ मिलकर स्फोट को खण्डशः व्यक्त करती हैं तो ऐसा मानने पर स्फोट सखण्ड हो जाएगा। इससे न केवल वैयाकरणों के अखण्डस्फोट की मान्यता खण्डित होगी बल्कि सखण्ड होने के कारण स्फोट अनित्य भी हो जाएगा। शब्द के अनित्य होने से वैयाकरणों का मूल सिद्धान्त–शब्दनित्यत्ववाद खतरे में पड़ जाएगा। इस प्रश्न के उत्तर में वैयाकरणों का कहना है कि हर एक ध्वनि स्फोट को पूरा पूरा ही अभिव्यक्त करती हैं। ऐसा करते हुए भी बाद बाद वाली ध्वनियाँ निष्प्रयोजन इसलिए नहीं होतीं क्योंकि वे पहले से अभिव्यक्त स्फोट को अधिक स्पष्ट करती चलती हैं। उत्तरोत्तर ध्वनियों की अभिव्यक्ति में क्रमशः स्पष्टीकरण की अधिकता होती है–

प्रत्ययैरनुपाख्येयैर्ग्रहणानुगुणैस्तथा।
ध्वनिप्रकाशिते शब्दे स्वरूपमवधार्यते।।(वा.प. 1.83)

भर्तृहरि के अनुसार ध्वनियाँ दो प्रकार की हैं–प्राकृत ध्वनि तथा वैकृत ध्वनि। प्राकृत ध्वनि उच्चरणावयवों से उत्पन्न पहली ध्वनि है जिसके द्वारा श्रोता के मानस में स्फोट की अभिव्यक्ति होती है। वैकृत ध्वनि प्राकृत ध्वनि से उत्पन्न ध्वनियाँ हैं जो इसमें कारण बनती हैं कि शब्द कितनी देर तक स्थिर रहता है–

शब्दस्य ग्रहणे हेतुः प्राकृतो ध्वनिरिष्यते।
स्थितिभेदे निमित्तत्वं वैकृतः प्रतिपद्यते।। (वा.प. 1.78)

शब्द जिस ध्वनि से उपहित होता है वह प्राकृत ध्वनि ही है। वैकृत

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

ध्वनि तो स्फोट को छू भी नहीं पाती। इसीलिए प्राकृत ध्वनि के अभिलक्षण ही स्फोट पर आरोपित होते हैं वैकृत ध्वनि के नहीं[51]। वैकृत ध्वनियाँ प्राकृत से उत्पन्न होती हैं तथा वे स्फोट की निरन्तरता मात्र में साधन होती हैं। उनके गुण धर्म स्फोट पर आरोपित नहीं होते (स्फोटात्मा तैर्न भिद्यते।)। प्राकृत ध्वनि के गुण हैं ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, अल्पप्राण, महाप्राण आदि जिन्हें ध्वनि विज्ञान में अधिखण्डात्मक स्वनिम (Supra segmental Phoneme) कहते हैं। शब्द पर ये ही आरोपित होते हैं। इसीलिए तो में शब्द में ह्रस्व, दीर्घ आदि की भ्रान्ति होती है तथा 'केसी शब्द में अल्पप्राण की जगह महाप्राण रख देने से अर्थ में परिवर्तन होता दीखता है। उदाहरण के लिए – पटना में प की जगह फ रख दें तो अर्थ बदल जाएगा। द्रुत, मध्य या विलम्बित होना वैकृत ध्वनि के गुण हैं। ये शब्दों के स्वरूप में परिवर्तन नहीं कर पाते। किसी शब्द को अभिव्यक्त करने वाली ध्वनियों को धीरे से बोलें या तेज से, उनसे अभिव्यञ्जित शब्द स्वरूप या अर्थ को हम अन्यथा ग्रहण नहीं करते।

इसके अतिरिक्त स्फोट विरोधियों द्वारा और अनेक प्रश्न उठाए गए हैं जिनका विवरण तथा समाधान वाक्यपदीय के ब्रह्मकाण्ड में देखा जा सकता है।

स्फोट को शब्द के रूप में प्रस्तुत करके वैयाकरण भाषा–सम्बन्धी अपनी अनेक वैज्ञानिक मान्यताओं को आधार दे पाते हैं। उदाहरण के लिए इसके द्वारा वैयाकरण सरलतापूर्वक यह बता पाते हैं कि शब्द की सत्ता आन्तरिक, अभौतिक, मानसिक तथा अखण्ड है और वह वस्तुतः नित्य विद्यमान रहने वाला भाषिक सामर्थ्य है। इतना ही नहीं, वे स्फोट को जिस शब्द तत्त्व का अभिव्यक्त रूप बताते हैं वे उस शब्दतत्त्व को शब्द ब्रह्म के रूप में व्यवस्थित भी कर पाते हैं।

शब्द का वास्तविक वाचक स्वरूप : वाक्य

भारत में प्राचीनकाल से ही इस विषय में कई मत रहे हैं कि भाषा में अर्थ देने वाली मौलिक इकाई कौन है? कुछ लोग पद को अर्थ का वाहक मानते हैं तो कुछ वाक्य को। इन मतों को क्रमशः 'पदवाद' एवं 'वाक्यवाद' कहा जा सकता है। इनमें भेद का प्रमुख आधार यह विवाद है कि प्रधानता किसकी है पद की अथवा वाक्य की (पदप्रकृतिः संहिता[52])। इन दो वादों का आधारभूत प्रश्न यह है कि भाषा की कौन सी इकाई अपने में सम्पूर्ण अर्थ देने

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitized by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

वाली है? पदवादी वाक्य को विभाज्य मानते हैं जबकि वाक्यवादी इसे अखण्ड मानते हैं। इस आधार पर उपर्युक्त मतों को सखण्डवाद तथा अखण्डवाद भी कहा जाता है। वाक्य के स्वरूप का वर्णन विद्वानों ने अपने–अपने दार्शनिक–सिद्धान्तों एवं मान्यताओं के अनुरोध से भिन्न–भिन्न प्रकार से किया है। अपनी दार्शनिक अथवा तकनीकी जरूरतों के आलोक में पद तथा वाक्य में से किसी एक को गौण अथवा मुख्य मानते हैं–

भिन्नं दर्शनमाश्रित्य व्यवहारोऽनुगम्यते।
तत्र यन्मुख्यमेकेषां तत्रान्येषां विपर्ययः।। (वाक्यपदीय 1.75)

(क) पदवाद

वैयाकरणों के अतिरिक्त प्रायः सभी चिन्तक वाक्य को पदों से संघटित मानते हैं। वाक्यपदीय के वाक्यकाण्ड में भर्तृहरि ने पदवादियों के 5 मत प्रस्तुत किये हैं। इनकी मान्यता का आधार यह है कि वाक्य–संरचना में पृथक्–पृथक् शब्द एवं शब्दार्थ पहले से ही उपस्थित होते हैं। वाक्य इन्हीं से संघटित एक इकाई होती है। वाक्य की रचना के बाद शब्द को वाक्य का एवं शब्दार्थ को वाक्यार्थ का आधार मान लिया जाता है। अतः इस मत के अनुसार 'वाक्य' खण्डों से निर्मित एक सम्पूर्ण इकाई है[53]। वर्णों से पद बनता है और पदों से वाक्य। इस मत में उनका प्रबल तर्क यह है कि एक ही 'क' आदि वर्ण भिन्न भिन्न पदों (जैसे कौवा, कहना आदि) में दिखाई पड़ते हैं। इसी तरह एक ही "कमल" आदि शब्द भिन्न भिन्न वाक्यों में मिलते हैं[54]। पदवादी पद संघात के रूप में तो वाक्य की सत्ता मानते हैं परन्तु उनके अनुसार अर्थबोधकता वाक्य में नहीं पदों में होती है। वाक्यार्थ वाक्य से पैदा नहीं होता अपितु यह पद से प्राप्त अर्थों का समूह मात्र है। इनके अनुसार, सम्प्रेषण के समय वर्णों एवं पदों तथा उनके अर्थों का क्रमशः निश्चय होना एक सार्वजनिक अनुभव है अतः वाक्य की अखण्डता को स्वीकार करना प्रत्यक्ष को झुठलाना है। मीमांसक सखण्डवाद के मुख्य पक्षधर हैं। उनके अनुसार पदों को एक इकाई में समन्वित एवं संघटित रखने वाले तत्त्व आकाङ्क्षा, योग्यता एवं सन्निधि हैं। ये वाक्यार्थ के सहकारी कारण भी होते हैं। मीमांसकों के अतिरिक्त नैयायिक एवं आलंकारिक भी अपने विभिन्न शास्त्रीय प्रयोजनों की पूर्ति के लिये सखण्ड वाक्यवाद का समर्थन तथा अखण्ड पक्ष का खण्डन करते हैं। वाक्यपदीय के वाक्यकाण्ड में वाक्य सम्बन्धी आठ मतों में से सखण्ड पक्ष से सम्बन्धित पाँच मत हैं, जो क्रमशः

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

अभिहितान्वयवाद तथा अन्विताभिधानवाद के अन्तर्गत वर्गीकृत किये जा सकते हैं। 1–क्रम एवं 2–संघात को 'अभिहितान्वयवाद' तथा 1–आख्यात शब्द, 2–आद्यपद एवं 3–साकांक्षपृथक्सर्वपद, पक्षों को' अन्विताभिधानवाद' के अन्तर्गत रख सकते हैं[55]।

(ख) वाक्यवाद

अखण्ड वाक्यवादी पदवाद के विपक्ष में हैं। भर्तृहरि इस पक्ष के नायक हैं। उनके अनुसार वाक्य, तथ्य अथवा कल्पना के रूप में एक विचार है जो वक्ता के मन में एक इकाई के तौर पर ही स्थित रहता है और इसकी अभिव्यक्ति भी एक इकाई के रूप में ही होती है। वे ध्वनियाँ जिन्हें हम सुनते हैं वैयाकरणों के अनुसार वे शब्द नहीं हैं, जैसा कि ऊपर विस्तार से आ चुका है। शब्द उन ध्वनियों से व्यक्त होने वाला आन्तर तत्त्व है–और यह तत्त्व हमेशा वाक्य के ही रूप में अर्थ का वाचक होता है, वर्ण अथवा पद के रूप में नहीं। यह तत्त्वतः प्रकाश अथवा ज्ञानस्वरूप है क्योंकि यह प्रकाशित करता अर्थात् विषय को सूचित करता है (अय्यर, पृ.199)। अभिव्यक्ति होने के बाद श्रोता को वाक्य का अवगम भी एक इकाई में ही होता है। उसके वर्ण, पद आदि तथाकथित अंश उस समय इस तरह विलीन हो जाते हैं कि उनका भान भी नहीं होता। अखण्डवाक्यवाद में भर्तृहरि का सबसे बड़ा तर्क यह है कि सभी प्रकार के मानवीय सम्प्रेषण तथा अवबोध वाक्यों के माध्यम से ही होते हैं। वर्णों एवं पदों की उपस्थिति तो आभासी है। इस पर प्रश्न उठ सकता है कि वाक्य के अन्तर्गत हमें वर्ण या पद जैसे आन्तरिक अवयवों की प्रतीति फिर क्यों होती है? भर्तृहरि बताते हैं कि ध्वनियाँ किसी दूसरे तक अपने मनोभावों को सम्प्रेषित करने की अनिवार्य शर्त हैं (परसंवेदनार्था व्यक्तिरभिस्यन्दते–वा.प.1.1. स्वो. वृ.)। चूंकि आन्तर शब्द तत्त्व वाक्य स्फोट के रूप में ध्वनियों के द्वारा जागृत किया जाता है और उससे उपहित होकर सामने आता है इसलिए ध्वनियों की क्रमवत्ता जो वर्ण या पद के रूप में सामने आती है वह वाक्य पर भी आरोपित कर दी जाती है। इसलिए वाक्य को हम पद या वर्ण से घटित मानने लगते हैं। यदि कमल आदि शब्द कई वाक्यों में मिलते हैं तो इससे यह सिद्ध नहीं होता कि वाक्य इन पदों से मिलकर बने हैं। भर्तृहरि के अनुसार– 'कमल खिलता है' और 'मैं कमल देखता हूँ', इन दो वाक्यों में कमल शब्द की समानता भ्रमात्मक है। ये दोनों वाक्य पूर्णतः भिन्न हैं। जब वाक्य में अंश ही नहीं है तो उनमें अंशतः

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

समानता भी कैसे हो सकती है? वाक्य के अन्तर्गत दिखने वाले वर्ण या पद वैसे ही अस्तित्वहीन हैं जिस प्रकार ए, ऐ आदि वर्णों में कल्पित किये गये (अ, इ, ए आदि) वर्णों के खण्ड–

पदे न वर्णा विद्यन्ते वर्णेष्ववयवा न च।
वाक्यात् पदानामत्यन्तं प्रविवेको न कश्चन।।(वा.प. 1.73)

यद्यपि वाक्यार्थ को बुद्धिकृत विश्लेषण के द्वारा खण्डों में तोड़ दिया जाता है। वे काल्पनिक खण्ड दूसरे वाक्य में विद्यमान खण्डों के समान लगने लगते हैं[56]। यह ऐसे ही भ्रमात्मक है जैसे किसी एक व्यक्ति की नाक दूसरे व्यक्ति के नाक की तरह लगने लगे। इस प्रतीति का तात्पर्य यह नहीं होता कि दोनों नाक एक ही है। भर्तृहरि ने गवय या नरसिंह के उदाहरण से यही बात समझाई है(वा.प. 2.90)।

इस प्रकार पदों में अर्थ कल्पित किए जाते हैं और वे अर्थ भी वाक्यार्थ पर आरोपित कर दिये जाते हैं[57]। पद तो बस शास्त्रीय कल्पनाएँ हैं, जिन्हें वाक्य में से इसलिए निकालते हैं ताकि भाषा–शिक्षण (Second language acquisition) आदि लौकिक और तकनीकी व्यवहार सम्भव हो सकें। वे तो बस वाक्य और वाक्यार्थ तक पहुँचने के उपाय अथवा उपकरण मात्र हैं। भर्तृहरि के अनुसार उपाय उन्हें कहते हैं जो साध्य के सिद्ध होने तक ग्रहण किये जाते हैं फिर त्याग दिये जाते हैं। जब बुद्धि वाक्यार्थ तक पहुँच जाती है तो उस समय उसमें पदार्थों का कोई अंश भी बाकी नहीं रह जाता[58]। यह वक्ता अथवा श्रोता का असामर्थ्य है कि वे वाक्य को ध्वनियों के माध्यम से ही ग्रहण कर पाते हैं तथा वाक्य के ग्रहण के बाद अन्तरालवर्ती पदों या वर्णों को भी वास्तविक मानते हैं। पद अवास्तविक हैं क्योंकि उनका स्वरूप तथा अर्थ दोनों अनिश्चित और सन्दिग्ध होते हैं[59]। उदाहरण के लिए अगर प्रकरण से विच्छिन्न करके Can शब्द को सामने रख दिया जाए तो कोई कैसे बता सकेगा कि यह सहायक क्रिया है अथवा कनस्तर का वाचक संज्ञा शब्द? पद वाक्यों के अतिरिक्त और कहीं उपलब्ध नहीं होते। अगर हो भी जाएँ तो उनके अर्थ का निर्णय किसी वाक्य के सापेक्ष ही हो पाता है[60]–

न हिकिञ्चित् पदं नाम रूपेण नियतंक्वचित्।
पदानां रूपमर्थो वा वाक्यार्थादेवजायते[61]।।

इसी कारण पद स्वतन्त्र व्यवहार के योग्य भी नहीं होते। ऐसे

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

अवास्तविक पदों से वाक्य की संरचना नहीं हो सकती। वाक्य केवल उच्चरित और सुनाई पड़ने वाली सत्ता मात्र नहीं है, वह तो एकात्मक विचार है जिसका विभाजन स्वाभाविक रूप से असम्भव है। ध्वनियाँ विचार के स्तर पर स्थित वाक्य की अभिव्यञ्जक अथवा प्रकाशक मात्र हैं। वाक्य उच्चारण से पहले वक्ता एवं उसके बाद श्रोता की बुद्धि में अखण्डरूप से स्थित रहता है। यह वाक्य ही वाक्यार्थ का एकमात्र कारण है। भर्तृहरि ने वाक्यपदीय के वाक्यकाण्ड में वाक्य संरचना से सम्बन्धित विभिन्न आचार्यों के आठ प्रमुख मत बताए हैं। इनमें तीन मत अखण्ड वाक्यवाद के हैं– 1–संघातवर्त्तिनी जाति, 2– एक अनवयव शब्द तथा 3–बुद्ध्यनुसंहृति। पाँचों विपक्षीय मतों का खण्डन करके भर्तृहरि ने अखण्ड वाक्यवाद की स्थापना की है। वाचकता केवल अखण्डवाक्य में ही मानते हुए भर्तृहरि ने वाक्य को ही शब्द कह दिया है (एकोऽनवयवयः शब्दः)। वाक्य का इससे बड़ा माहात्म्य क्या होगा कि उसे ही शब्द के रूप में पहचान लिया जाए?

अर्थ का स्वरूप (प्रतिभा)

शब्द की ही भाँति अर्थ की सत्ता भी मानसिक ही है। जिस तरह ध्वनियों के संस्कारों से उपहित हुई बुद्धि ही वाचक शब्द है उसी प्रकार बाह्य वस्तुओं की मन पर पड़ी छाप, अथवा मानस में प्रतिबिम्बित बाह्य वस्तु का संस्कार ही वाच्य अर्थ है। मानस में वस्तु का जो चित्र छपता है वह प्रायः बाह्य जगत् से ही लिया गया होता है[62]। लेकिन बाहरी वस्तुओं को शब्द का अर्थ नहीं माना जा सकता[63]। अर्थ को यदि मानसिक न माना जाए, तो बहुत सारी ऐसी संकेत्य (Referent) वस्तुएँ जो बाहर नदारद हैं, उनकी प्रतीति का अभाव होने लगेगा, जैसे– "खरगोश की सींग" या "फ्रांस का राजा गंजा है" आदि । लेकिन ऐसा नहीं होता। भर्तृहरि भी कहते हैं कि अलातचक्र आदि वस्तुएँ जो वस्तुतः बाहर नहीं हैं उन शब्दों के उच्चारण से कुछ मानसचित्र उपस्थित होता ही है (अत्यन्तासत्यपि ह्यर्थे ज्ञानं शब्दः करोति हि[64])। इससे अर्थ का मनोगत होना (बौद्धता) सिद्ध हो जाता है।

अत्यन्तमतथाभूते निमित्ते श्रुत्यपाश्रयात्।
दृश्यतेऽलातचक्रादौ वस्त्वाकारनिरूपणा।।(वाक्यपदीय 1.142)

वाक्यपदीय के वाक्यकाण्ड में आचार्य भर्तृहरि ने पदार्थ के विषय में 12 विभिन्न मतों की चर्चा की है (वा.प.2.119 से 142)। इसमें सिद्धान्त पक्ष के रूप में उन्होंने अर्थ के मानस स्वरूप को ही समर्थित किया है (वही 2.132)।

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

ध्यान रखना चाहिए कि भले ही अर्थ बुद्धि में स्थित हो फिर भी श्रोता मन में उसे ग्रहण करने के बावजूद उसे बाह्यतया ही ग्रहण करता है। अन्यथा लोक व्यवहार न चल सके (स बाह्यं वस्त्विति ज्ञातः)।

जिस प्रकार केवल वाक्य ही सम्प्रेषण में समर्थ भाषिक इकाई है ध्वनि, वर्ण या पद नहीं; उसी प्रकार अर्थ का वास्तविक स्वरूप भी वाक्यार्थ ही है, पदार्थ इत्यादि नहीं। हमें सम्प्रेषण के दौरान जो बोध होता है वह वाक्यार्थ के रूप में ही होता है। जैसे शब्द के लिए वैयाकरणों ने एक नया पारिभाषिक नाम– 'स्फोट' दिया उसी प्रकार अर्थ को भी वैयाकरणों ने 'प्रतिभा' इस पारिभाषिक शब्द से अभिहित किया है। इसकी दो व्युत्पत्तियाँ हैं। इन व्युत्पत्तियों के अनुसार अर्थ तथा उसकी प्रक्रिया दोनों को प्रतिभा कहा जा सकता है । अर्थ प्राप्ति की सामान्य प्रक्रिया को प्रतिभा कहा गया है इसके लिए भाव प्रधान व्युत्पत्ति दी जा सकती है–प्रतिभानं प्रतिभा (= प्रतिभासित होने को प्रतिभा कहते हैं)। इस प्रक्रिया से प्राप्त अर्थ को भी प्रतिभा शब्द से ही पुकारा गया है। इसके लिए कर्तृप्रधान व्युत्पत्ति काम में लाई जाएगी– प्रतिभाति इति प्रतिभा (शब्द के उच्चारण के बाद जो कुछ मन में प्रतिभासित होता है वह प्रतिभा है।)। प्रतिभा का तात्पर्य अखण्डतया भासित होने से है। जब वक्ता वाक्य का प्रयोग करता है तो श्रोता को वाक्यार्थ क्रमंशः न आकर बिजली की कौंध की तरह अखण्ड रूप में एक ही साथ प्रतिभासित हो जाता है। तात्पर्य यह है कि वाक्यार्थ पदार्थों के टुकड़ों से मिलकर नहीं बना होता बल्कि इसके उलट पदार्थ ही विश्लेषण के द्वारा अखण्ड वाक्यार्थ में से निकाले जाते हैं। वाक्यार्थ की पूर्ण अभिव्यक्ति के पहले अनेक बार हमें लगता है कि उच्चारण के क्रम में कुछ आन्तरिक अर्थ भाग भासित हो रहे हैं। उन्हें पदार्थ कह दिया जाता है। लेकिन इन प्रतीत होने वाले अर्थभागों की सत्ता वास्तविक नहीं होती–

विच्छेदग्रहणेऽर्थानां प्रतिभाऽन्यैव जायते।
वाक्यार्थ इति तामाहुः पदार्थैरुपपादिताम्।। (वाक्यपदीय 2.144)

वैयाकरणों के पास पदार्थ की प्रातिभासिकता के लिए एक महत्त्वपूर्ण तर्क है। उनका कहना है कि अगर पदार्थों की सत्ता वास्तविक होती तो वे वाक्यार्थ के अवबोध के बाद भी हमारे मस्तिष्क में विद्यमान रहते। वे हमारे मस्तिष्क में पहले आते हुए से लगते तो हैं लेकिन बाद में वाक्यार्थ में ही विलीन हो जाते हैं। वाक्यार्थ के आने के बाद वाक्यार्थ के अन्तर्गत यदि

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

हम उनका अर्थ निर्धारित करने का प्रयत्न भी करें तो भी पूरा वाक्यार्थ आने से पहले उनके वाले अर्थ की अपेक्षा उनका बाद वाला अर्थ बिलकुल अलग हो गया होता है[65]। उन आन्तरिक अर्थ भागों को हम अधिक से अधिक वाक्यार्थ तक पहुँचने का उपकरण भर मान सकते हैं। वे वाक्यार्थ के जनक कतई नहीं माने जा सकते। वस्तुतः प्रतिभा हमारी शाब्द चेतना का अर्थ वाला आयाम है जिसे किसी बाहरी उत्तेजक की आवश्यकता नहीं है। मद्य बनाने की प्रक्रिया के घटक द्रव्यों में बाहर से किसी मादक शक्ति को डालने की आवश्यकता नहीं होती। वे तो एक प्रक्रिया विशेष से गुजारने पर स्वतः ही मादक हो जाते हैं। उसी प्रकार सम्प्रेषण तथा अवबोध की परिस्थिति घटित होने पर प्रतिभा स्वतः अपने आपको व्यक्त कर देती है[66]।

भर्तृहरि के अनुसार शब्द की ही भाँति अर्थतत्त्व भी सर्वव्यापक है। यह केवल प्रबुद्धजनों तक सीमित न होकर बच्चों, यहाँ तक कि प्राणिमात्र तक भी व्याप्त होता है। प्रतिभात्मक अर्थतत्त्व का अनुभव सभी लोग अपने अन्दर निरन्तर करते हैं इसलिये इसको झुठलाना तो मानो अपने आपको ही झुठलाना है।

वाक्यार्थ के प्रतीत होने की वास्तविक प्रक्रिया अर्थात् प्रतिभा हमारी चेतना के साथ इतनी एकाकार होती है कि हम उसका न तो किसी दूसरे के प्रति इदमित्थं वर्णन कर सकते हैं न ही अपने लिए उस प्रक्रिया की व्याख्या कर सकते हैं।

इदं तदिति सान्येषामनाख्येया कथञ्चन।
प्रत्यात्मवृत्ति सिद्धा सा कर्त्रापि न निरूप्यते।।(वाक्यपदीय 2.144)

हम प्रतिभा की परिभाषा नहीं कर सकते हैं लेकिन इसका तात्पर्य प्रतिभा का अभाव नहीं है। प्रतिभा तो हमारे चैतन्य के साथ एकमेक होने के कारण हमारे लिए इतनी अपरोक्ष होती है कि उसका कथमपि खण्डन नहीं किया जा सकता। प्रतिभा की सत्ता का अनुमान हम उसके कार्यों के आधार पर कर सकते हैं। यह प्रतिभा ही है जो वाक्यार्थ के आने से पहले असत् अर्थ खण्डों को एकात्मक करके उन्हें एक सूत्र में बाँधती है तथा उन्हें व्यर्थ होने से बचाती है–

उपश्लेषमिवार्थानां सा करोत्यविचारिता।
सार्वरूप्यमिवापन्ना विषयत्वेन वर्तते।। (वाक्यपदीय 2.145)

सम्प्रेषण के दौरान प्रयुक्त सारे शब्द चाहे वे ध्वन्यात्मक हों अथवा

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

संकेतात्मक, वे सभी प्रतिभा के कारण होते हैं तथा अखण्ड वाक्यार्थ को ही उत्पन्न करते हैं। इसी नाते हमारा सम्प्रेषण सफल हो पाता है। शब्द प्रतिभा के हेतु बन पाएँ इसमें अभ्यास सहकारी होता है। विशेष अर्थ में शब्दों अथवा अन्य संकेतों के प्रयोग को बारम्बार देखने से उस व्यक्ति के प्रति शब्द प्रतिभा उत्पन्न करने में समर्थ हो पाते हैं।[67] प्रतिभा को उत्पन्न करने वाला यह अभ्यास मनुष्य की चेतना में प्रारम्भ से ही प्रदत्त होता है। जैसे कि मानव उसे पहले से ही लेकर इस दुनियाँ में आया हो। इसलिए भर्तृहरि इसे दो प्रकार का मानतेहैं–1. इस जन्म में आहित अभ्यास, तथा 2. पिछले जन्मों से चला आ रहा अभ्यास।[68] वस्तुतः प्रतिभात्मक अर्थ शब्द भावना का ही अंग है जो पिछले जन्म ही चली आ रही होती है।

कोई भी चेष्टा करने से पहले प्राणी, चाहे वह मनुष्य हो या मनुष्येतर, निश्चित रूप से अपने मन में विद्यमान अर्थ तत्त्व का परामर्श करता ही है।[69] कोई कर्म चिन्तन विरहित नहीं होता। चिन्तन मानसिक अर्थ के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इसलिए संसार में सभी चेतन जीवों के पास यह प्रतिभात्मक अर्थ उपस्थित होता है। प्रतिभात्मक अर्थ को उत्पन्न करने वाला है स्फोटात्मक शब्द। इस प्रकार सिद्ध होता है कि प्राणिमात्र शब्द तथा अर्थ के सामर्थ्य से युक्त है।

शब्द–अर्थ सम्बन्ध

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि शब्द तथा अर्थ में वस्तुतः कोई भेद नहीं है। वे दोनों एक ही तत्त्व के दो आयाम हैं (वा.प. 2.31)। ये दोनों आयाम बीज अथवा शक्ति के रूप में उस परम शब्दतत्त्व में अभिन्न होकर विद्यमान रहते हैं। वैसे ही जैसे मोरनी के अंडे के रस में उससे पैदा होने वाले बच्चे के चित्र विचित्र रूप एकमेक होकर सामर्थ्य के रूप में स्थित रहते हैं[70]। वाचक या संकेत होने की शक्ति (श्रुतिशक्ति, प्रकाशकत्व) तथा वाच्य या संकेतित होने की शक्ति (अर्थशक्ति, प्रकाश्य) शब्दतत्त्व में सदा समाहित रहती हैं[71]। हम जब कुछ कहने का प्रयत्न करते हैं तो यही शक्तियाँ मूर्त होकर अभिव्यक्त होती हैं आन्तरिक शब्दतत्त्व स्वयं इन दो रूपों (वाचक–वाच्य) में अभिव्यक्त हो रहा होता है–

तत्र ह्यान्तरे तत्त्वे श्रुत्यर्थ शक्ती संसृज्येते इति विवर्त दशायां श्रुत्यर्थशाखात्मना तस्यैव विकासाद् वाच्यवाचकरूपतया भेदावभासौ।। (वा. प. 1, वृत्ति पृ. 102)

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

यद्यपि शब्द एवं अर्थ एक ही हैं और उनमें सम्बन्ध तादात्म्य अथवा अध्यास का ही हो सकता है, फिर भी सम्प्रेषण की दशा में जब शब्द तथा अर्थ परस्पर भिन्न भिन्न कार्यों को सम्पादित करते हैं तब उनमें कोई न कोई सम्बन्ध मानना ही पड़ता है। वैयाकरणों के अनुसार इन दोनों में दो प्रकार के सम्बन्ध माने जा सकते हैं–कार्यकारणसम्बन्ध तथा योग्यता सम्बन्ध (कार्यकारणभावेन योग्यभावेन च स्थिताः[72])। योग्यता सम्बन्ध (अथवा, प्रकाशक– प्रकाश्य सम्बन्ध) का मतलब है एक दूसरे के द्वारा नियमतः गृहीत होना। शब्द और अर्थ में एक दूसरे को ग्रहण करने की तथा एक दूसरे द्वारा गृहीत होने की स्वाभाविक क्षमता होती है। शब्द का कोई न कोई अर्थ होगा ही। शब्द निरर्थक नहीं हो सकता। इसी प्रकार हर प्रकार के अर्थ में शब्द के द्वारा कहे जाने की क्षमता (शब्दाभिलाप्यता) होती है(न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते)। यह योग्यता इन दोनों में उतनी ही स्वाभाविक होती है जितनी इन्द्रियों का उनके विषयों के साथ। आँख और दृश्य के सम्बन्धों को न तो कोई परिभाषित करता है और न ही दृश्य ग्रहण के लिए कोई आँख को सुशिक्षित करता है। ज्यों ही हम आँख खोलते हैं दृश्य गृहीत हो जाता है। शब्द तथा अर्थ में भी सम्बन्ध उतना ही स्वाभाविक है–

इन्द्रियाणां स्वविषयेष्वनादिर्योग्यता यथा।
अनादिरर्थैः शब्दानां सम्बन्धो योग्यता तथा।।

(वाक्यपदीय 3.3.29)

इसी सम्बन्ध को वाच्य–वाचकभाव सम्बन्ध भी कहते हैं। वैयाकरणों का सिद्धान्त है "सर्वे सर्वार्थवाचकाः"। सभी शब्द सभी अर्थों का वाचन करा सकते हैं। शब्दमात्र अर्थमात्र का बोध कराने में योग्य हैं। लेकिन ऐसा होता इसलिए नहीं है कि संकेत वहाँ उपाधि बनती है जो शब्द की वाचकता को अर्थवशेष में नियत कर देती है– इन्द्रियविषयवद्वा प्रकाश्यप्रकाशकभावेन समयोपाधिर्योग्यता सम्बन्धः।(वा.प.1.23 परस्वो., पृ.49)। संकेतग्रह उसी प्रकार सहायक है जैसे रूप का ग्रहण करने में आँखों को प्रकाश की सहायता अपेक्षित होती है[73]।

शब्द तथा अर्थ में इसके अलावा कार्य–कारण सम्बन्ध भी होता है। श्रोता की दृष्टि से शब्द अर्थ का कारण है जबकि वक्ता दृंष्टि से अर्थ शब्द का कारण है। सम्बन्धसमुद्देश में भर्तृहरि ने कहा भी है–

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

शब्दः कारणमर्थस्य स हि तेनोपजन्यते।
तथाहि बुद्धिविषयादर्थाच्छब्दः प्रतीयते।।(3.3.160)

शब्द तथा अर्थ की भाँति उन दोनों के सम्बन्ध भी नित्य हैं। यह सम्बन्ध शब्द तथा अर्थ व्यक्ति का न होकर शब्दतत्त्व के दो आयामों– वाचकता तथा वाच्यता का है। वे दोनों मूलतः एक ही हैं इसलिए उन दोनों के बीच जो भी सम्बन्ध लिया जाए वह नित्य ही है। यह नित्यता सम्बन्ध शब्द के दो आयामों वाचकता–वाच्यता के मध्य तो है ही, उसके अतिरिक्त लोकप्रयुक्त शब्द व्यक्ति तथा अर्थ व्यक्ति को भी यदि हम लेते हैं तो उनकी भी नित्यता सिद्ध है। इसका बड़ा कारण अनादिता बताई गई है। किसी ने सृष्टि के शुरू में "गौः से गाय का अर्थ लिया जाएगा" इस प्रकार का कृत्रिम वाच्य–वाचकभाव शब्दार्थ के बीच में स्थापित किया होगा[74] इसमें प्रमाण नहीं है–

"नित्यः सम्बन्ध इत्यस्येदंभावे सति शब्दार्थयोः सोऽयमिति यः सम्बन्धः सोऽर्थादेशनस्य कर्तुमशक्यत्वात् औत्पत्तिकः स्वभावसिद्धः न केनचित् कर्त्रा कश्चित् प्रतिपत्तारं प्रत्यज्ञातपूर्वः तत्प्रथमं कृत इति। तस्मादनादिर्नित्यं प्राप्ताविच्छेदः शब्दार्थयोः सम्बन्धः"। (वा.प. 1.23, स्वो.वृ.)

वाणी का मौलिक स्वरूप : शब्द ब्रह्म

शब्द तथा अर्थ जिस सूक्ष्म तत्त्व के स्थूल अवस्थान्तर बताए जाते हैं वह परावाक् (अथवा, परपश्यन्ती[75]) मनुष्य की चेतना से अभिन्न है (तन्मात्रामव्यतिक्रान्तं चैतन्यं सर्वजातिषु[76])। इस चेतना में व्यक्तिगत भेद नही हैं। यह सभी चैतन्यवान् वस्तुओं के अन्दर स्थित है। भाषिक जगत् तथा ब्रह्माण्डीय जगत् दोनों की उत्पत्ति इसी परावाक् से होता है। इसीलिए इसे शब्द ब्रह्म भी कहते हैं। श्रुतियों में प्रसिद्ध ब्रह्म को शब्दात्मक सिद्ध करके भर्तृहरि ने भारतीय शब्द–दर्शन को एक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त प्रदान किया है। इसकी हर जगह आलोचना भी हुई है। ब्रह्म के शब्दात्मक होने का कारण भर्तृहरि ने जगत् का शब्दात्मक होना बताया है। अद्वैत के ढाँचे में सभी कार्य कारणात्मक होते हैं क्योंकि उसके अनुसार कारण ही कार्य के रूप में विपरिणत हो जाया करता है। कार्यकारण का ही अवस्थान्तर है। जैसे घड़े में सर्वत्र उपलब्ध होने के कारण मिट्टी उसका कारण सिद्ध होती है, उसी प्रकार संसार की समस्त वस्तुओं में अनुस्यूत होने के नाते शब्द ही संसार का कारण सिद्ध होता है–

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

"तत्तु भिन्नरूपाभिमतानामपि विकाराणां प्रकृत्यन्वयित्वाच्छब्दोपग्राह्यतया शब्दोपग्राहितया च शब्दतत्त्वमित्यभिधीयते"। (वा.प. 1.1, स्वो.वृ.पृ.3)

यदि संसारगत घट–पट आदि वस्तुएँ शब्दात्मक न होतीं तो शब्द से उच्चारण करने पर उनका ग्रहण कैसे होता। किसी अन्य के कथन से किसी अन्य का ग्रहण कहाँ होता है? इस तरह संसार के शब्दात्मक होने से शब्द जगकारण सिद्ध होता है और विश्व का कारण ब्रह्म के अतिरिक्त कोई और नहीं है इस अप्रतिभट वेदान्ती तर्क के अनुसार शब्द ही ब्रह्मसिद्ध होता है।

शब्द की जगत्कारणता और उसके कारण की ब्रह्मरूपता भर्तृहरि की उच्छृंखल कल्पना नहीं है। यह सिद्धान्त श्रुतियों तथा स्मृतियों में भी बार बार आया है। इस अध्याय के प्रारम्भ में ही ऋग्वेद के वाक्सूक्त (10.125) को उद्धृत किया गया है जिसमें वाक् अपने आपको "आरभमाणा भुवनानि विश्वा" कहती है। ब्राह्मणों में वाग्वै ब्रह्म, वाग्वै समुद्रः जैसी अभिव्यक्तियाँ अनेकशः आयी हैं। वेद जिसे ब्रह्म का शब्दात्मक रूप माना गया है उससे सृष्टि की उत्पत्ति[77] का वर्णन भी जगत्कारण ब्रह्म को शब्दात्मक सिद्ध करता है–

शब्दस्य परिणामोऽयमित्याम्नायविदो विदुः।
छन्दोभ्य एव प्रथममेतद्विश्वं व्यवर्तत।।(वा. प.1.124)

संवर्त अवस्था में स्थित एकात्मक शब्द ब्रह्म एक ओर शाब्द सृष्टि के रूप में अपने को व्यक्त करता है तो दूसरी ओर दृश्यमान स्थूल जगत् की सृष्टि में। सम्पूर्ण सृष्टि के विस्तार को भोक्ता, भोक्तव्य और भोग के रूप में देखा जा समझा जा सकता है। दृश्यमान क्रियात्मक जगत् में पौर्वापर्य की व्यवस्था शब्द ब्रह्म अपनी काल नामक शक्ति से करता है। यह ब्रह्म की प्रधान शक्ति है जिसके अधीन बहुत सारी और शक्तियाँ होती हैं। जगत् की क्रम व्यवस्था काल शक्ति अपनी प्रतिबन्ध तथा अभ्यनुज्ञा इन दो शक्तियों के द्वारा करती है। वेद इस लोक में शब्द ब्रह्म का प्रतिनिधि है। इसके अतिरिक्त वेद के माध्यम से हम शब्द ब्रह्म को प्राप्त भी कर सकते हैं। वेद को ठीक ठीक समझने के लिए वेदांगों का प्रणयन हुआ है जिसमें व्याकरण सबसे प्रमुख है। ये वेदाङ्ग भी शब्दात्मक ही हैं। इस तरह वैयाकरणों के दर्शन में साधन तथा साध्य दोनों का अद्वैत सिद्ध होता है।

शब्दयोग[78]

वाच्य–वाचक, संस्कृत–अपभ्रंश जैसे व्यावहारिक भेदों से भरी वैखरी वाणी से चलकर भेदरहित, चैतन्य स्वरूप परावाक् (शब्दब्रह्म) तक

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

की यात्रा संसार से मोक्ष तक की यात्रा भी है। इस साधना यात्रा में शब्द का एक सिरा (वैखरी) उपकरण है तो दूसरा सिरा (परा वाक्) प्राप्तव्य। इस तरह बन्ध–मोक्ष की हमारी सारी यात्राएँ शब्द के अन्दर ही गतिमान् होती हैं। हम मुक्त भी तब होते हैं जब हम अपने शुद्ध, असंकीर्ण चेतन शब्द स्वरूप का अनुभव कर पाते हैं। बन्ध–मुक्ति–मुक्तिसाधन ये सब शब्दात्मक हैं। वैयाकरण शब्द ब्रह्म की प्राप्ति की साधना को शब्द योग नाम देते हैं जिसे आगे स्पष्ट किया जा रहा है।

बहुत से लोग केवल ध्वनि व्यवस्था मात्र को ही भाषा समझ लेते हैं लेकिन जो वाग्योग में प्रवीण होते हैं वे समझ पाते हैं कि वैखरी तो बस भाषा का चौथा हिस्सा है। वैखरी वाक् का स्थूलतम रूप है। हमें साधना वहीं से शुरू करनी होती है। साधना का प्रकार है व्याकरण की सहायता से वैखरी वाणी में विद्यमान अपभ्रंश रूपों से मुक्ति। वैखरी के शुद्ध होने से हमारी मध्यमा वाणी शुद्ध होती है। संसार के कारण के रूप में विद्यमान जो शब्दतत्त्व है, मध्यमा तथा वैखरी उसी के स्थूलतर–स्थूलतम रूप है। ये रूप हमें निरन्तर उपलब्ध हैं और हमारे अनुभव में आते हैं। साधन के रूप में इनका उपयोग करते हुए हम परमतत्त्व शब्द ब्रह्म (परावाणी) तक पहुँच सकते हैं। इस उपलब्धि के साधन को वैयाकरणों ने शब्दयोग[79] अथवा वाग्योग नाम दिया है। शब्दयोग की परिधि को कहाँ से शुरू माना जाए, इस विषय में दो मत हैं। <u>एक</u> तो यह कि व्याकरण के उपयोग से उत्पन्न पुण्य द्वारा हम शब्दयोग पर आरूढ होते हैं और शब्दयोग हमें शब्दब्रह्म तक ले जाता है। <u>दूसरा</u> मत (Bronkhorst:1995) यह है कि व्याकरण ही हमें एकात्मता का दर्शन कराने में समर्थ है, इसलिए शब्दयोग की परिधि हमें व्याकरण से ही शुरू मान लेनी चाहिए। इसका समर्थन महाभाष्य के पहले आह्निक–पस्पशाह्निक में मिलता है। वहाँ उद्धृत एक कारिका में वाग्योग शब्द आया है–"वाग्योग को जानने वाला जो कुशल व्यक्ति शब्द व्यवहार के समय ठीक ठीक शब्दों का प्रयोग करता है वह इहलोक में और परलोक में दोनों स्थानों पर कभी न समाप्त होने वाले उत्कर्ष को प्राप्त होता है"[80]। पहले मत में व्याकरण मुक्ति का अप्रत्यक्ष साधन तथा शब्दयोग का प्रत्यक्ष साधन सिद्ध होता है जबकि दूसरे मत के अनुसार व्याकरण मुक्ति का प्रत्यक्ष साधन सिद्ध होता है क्योंकि वह भी वाग्योग की प्रक्रिया के अन्तर्गत आ जाता है। जैसा कि महाभाष्यकार ने भी "महो देवो मर्यांआविवेश" मन्त्र की व्याख्या में कहा है

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

कहा है – महता देवेन नः साम्यं स्यादित्यध्येयं व्याकरणम् (महान् शब्द ब्रह्मात्मक देव के साथ हमारा एकीकरण हो जाए इसलिए हमें व्याकरण पढ़ना चाहिए। (पस्पशाह्निक)।

हम जिस भी भाषा का प्रयोग भावों के सम्प्रेषण में करते हैं उसके मानक तथा अमानक कई रूप होते हैं। भाषा उसमें मिले हुए अपभ्रंश अथवा अमानक रूपों के कारण दूषित हो जाती है। अपभ्रंश को भाषा का तलछट और उसके साधुस्वरूप को वाणी का परम रस तथा दिव्य ज्योति कहा गया है[81]। इसलिए भाषिक योग का पहला सोपान होता है वैखरी भाषा में मिश्रित अमानक रूपों को दूर करके वाणी को पवित्र करना। इसके लिए हमें शुद्ध तथा अशुद्ध शब्दों की पहचान करनी होती है। इस काम में हमारा सबसे अधिक सहायक होता है व्याकरण शास्त्र। व्याकरण वाणी के दोषों की चिकित्सा करने वाला शास्त्र है[82]। व्याकरण शास्त्र की सहायता से हम साधु तथा असाधु शब्दों के मध्य भेद जान लेते है और अपने वाग्व्यवहार में शुद्ध शब्दों का प्रयोग करते हैं। इसी कारण व्याकरण को मोक्ष का राजमार्ग कहा है–

इदमाद्यं पदस्थानं सिद्धिसोपानपर्वणाम्।
इयं सा मोक्षमाणानाम् अजिह्मा राजपद्धतिः(वा.प. 1.16)

वस्तुतः हमारी भाषा में अपभ्रंशों का अनुपात इतना अधिक होता है कि जब हम उनसे बचने की चेष्टा करते हैं तो हमें निरन्तर सावधान होना होता है। यह सतत अवधान एक प्रकार के योग में परिणत होता है। यह प्रक्रिया एक तीव्र एवं गहन प्रकार की सावधानी की अपेक्षा रखती है। व्याकरण का अध्ययन तथा उसके द्वारा शुद्ध शब्दों का ज्ञान एवं प्रयोग, ये सब मिलकर तप के रूप में परिणत होते हैं ('तपसामुत्तमं तपः' वा.प.1.11)। इस तपस्या के परिणामस्वरूप हमें जो पुण्य (अपूर्व) अर्जित होता है वह हमारे विचारों के स्तर पर विद्यमान वाणी–मध्यमा वाक् के शोधन में प्रवृत्त होता है। मध्यमा के शुद्ध होने का तात्पर्य है मनोगत मलों का दूर होकर चित्त का नितान्त विशुद्ध हो जाना क्योंकि मध्यमा मानसिक भाषा का ही तो नाम है।

अद्वैत की प्रणाली में मुक्ति, भेदों से पार जाने में तथा एकात्मकता को समझने में है। शब्द योग भी हमें अनेक प्रकार के मिश्रणों, सखण्डताओं तथा क्रमों से एकात्मकता की ओर ले जाता है। उपर्युक्त वाक्–शोधन की प्रक्रिया से चलकर हम अन्ततः वाणी के उस मूलस्रोत का दर्शन कर पाते हैं जो वस्तुतः हमारा ही स्वरूप है। इसकी प्रक्रिया को भर्तृहरि ने वा.प. 1.14

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

कारिका पर अपनी वृत्ति में समझाया है। शुद्ध शब्द के ज्ञान तथा प्रयोग दोनों से पुण्य की उपलब्धि होती है (महाभाष्य, पस्पशाह्निक)। ज्ञान हो अथवा प्रयोग दोनों लाभ व्याकरण के द्वारा ही मिल पाते हैं। वाक्यपदीय ब्रह्मकाण्ड के प्रसिद्ध टीकाकार वृषभदेव ने अपनी टीका पद्धती में उपर्युक्त अंशों की व्याख्या की है–"शुद्ध शब्दों के प्रयोग के ज्ञान से शब्द के भेद रहित स्वरूप का भान होता है जिससे क्रमसंहार घटित होता है। अर्थात् साधक में अवास्तविक भेद युक्त विषयों की उलझनें समाप्त हो जाती हैं और उसके अन्तःकरण की वृत्तियाँ एक वस्तु के प्रति उपसंहृत हो (सिमट) जाती हैं। इससे वह विशिष्ट प्रकार के योग को प्राप्त कर लेता है"।

उपर्युक्त वर्णनों से स्पष्ट है कि व्याकरण व्यक्ति को शब्दयोग में प्रतिष्ठित करने की ऊर्जा देता है तथा शब्दयोग उसे शब्दार्थ तत्त्व की एकता का अनुभव करा देता है, जो शब्दब्रह्म के साक्षात्कार की स्थिति है।

इस प्रकार शब्दयोग, शब्दपूर्वयोग अथवा वाग्योग की प्राप्ति में सहायक होने के कारण व्याकरण मोक्षप्राप्ति का द्वार बन जाता है। बाह्य वैखरी की अशुद्धियों का अपसारण करने से व्यक्ति के मन का दर्पण भी निर्मल हो जाता है। उस मनोदर्पण में उसके अपनी चेतना में स्थित शब्द प्रत्यक्ष हो पाता है। यह आन्तर शब्द ही शब्दतत्त्व अथवा शब्दब्रह्म है जो हमारी अपनी चेतना से पृथक् नहीं है। इसके साथ एकमेक हो जाना ही जीवन का परम लक्ष्य मोक्ष है–

अपि प्रयोक्तुरात्मानं शब्दमन्तरवस्थितम्।
प्राहुर्महान्तमृषभं येनसायुज्यमिष्यते।। (वा.प. 1.130)

निदेशक
स्वामी विवेकानन्द संस्कृति केन्द्र
भारतीय दूतावास, तेहरान

सन्दर्भ एवं पाद टिप्पणी

1. *सा सर्वविद्याशिल्पानां कलानां चोपबन्धनी।*
तद्वशादभिनिष्पन्नं सर्वं वस्तु विभज्यते।।(वाक्यपदीय 1.116)
2. *न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।*
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते।।(वाक्यपदीय 1.131)

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

3. इदमन्धंतमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते।।(काव्यादर्श 1.3)
4. इह त्रीणि ज्योतींषि त्रयः प्रकाशाः स्वरूपपररूपयोरवद्योतकाः ।
तद्यथा–योऽयं जातवेदा यश्च पुरुषेष्वान्तरः प्रकाशो यश्च प्रकाशाप्रकाशयोः प्रकाशयिता शब्दाख्यः प्रकाशस्तत्रैतत् सर्वमुपनिबद्धं यावत् स्थास्नु चरिष्णु च इति ।
5. वाग्रूपताचेदुत्क्रामेदवबोधस्य शाश्वती।
न प्रकाशः प्रकाशेत सा हि प्रत्यवमर्शिनी।।(वाक्यपदीय 1.132)
6. यह सूक्त एक आध्यात्मिक प्रकार का सूक्त है जिसकी ऋषि स्वयं आम्भृण ऋषि की पुत्री वाक् है। आध्यात्मिक सूक्त वे होते हैं जिसमें ऋषि स्वयं अपने बारे में बात करता है।(दे. अथाध्यात्मिक्य उत्तमपुरुषयोगाः। अहमिति चैतेन सर्वनाम्ना। निरुक्त 7.2)।
7. अहमेव स्वमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्।।(ऋग्वेद 10.125.5)
8. अहं दधामि द्रविणं/संगमनी वसूनाम्। (वही 10.125.02, 03)
9. अहं राष्ट्री/अहं जनाय समदे कृणोमि। (वही 10.125.03, 06)
10. अहं रुद्राय धनुरातनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ। (वही 10.125.06)
11. अमन्तवो मां त उपक्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि।।(वही 10.125.04)
12. वाङ्नो विवृणुयात् आत्मानम्। (महाभाष्य पस्पशाह्निकम्, पृ. 45)
13. तस्य वाचकः प्रणवः, तज्जपस्तदर्थभावनम् (योगदर्शन 1.27,28)
14. जप्येनैव तु संसिध्येद् ब्राह्मणो नात्र संशयः।।(मनुस्मृति 2.87)
15. अ–मूला तत्क्रमाज्ज्ञेया क्षान्तासृष्टिरुदाहृता। (परात्रीशिका 8)
16. वेदो नारायणः साक्षात् स्वयंभूरिति शुश्रुम।।(श्रीमद्भागवत 6.1.40)
17. प्राप्त्युपायोऽनुकारश्च तस्य वेदो महर्षिभिः।
एकोऽप्यनेकवर्त्मेव समाम्नातः पृथक् पृथक्।।(वाक्यपदीय 1.5)
18. विधातुस्तस्य लोकानामङ्गोपाङ्गनिबन्धनाः।
विद्याभेदाः प्रतायन्ते ज्ञानसंस्कारहेतवः।।(वाक्यपदीय 1.10)
19. अर्थक्रियासु वाक् सर्वान् समीहयति देहिनः।
तदुत्क्रान्तौ विसंज्ञोऽयं दृश्यते काष्ठकुड्यवत्।।(वाक्यपदीय 1.135)
20. सैषा संसारिणां संज्ञा बहिरन्तश्च वर्तते। (वाक्यपदीय 1.134)
21. चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति।।(ऋग्वेद 1.64.45)
22. प्रत्यक्चैतन्येऽन्तःसन्निवेशितस्य परंसंबोधनार्था व्यक्तिरभिष्यन्दते। (वाक्यपदीय 1.1, स्वोपज्ञवृत्ति)

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

23. उपादानो वाचकः। उपादीयते येनार्थः स्वरूपेऽध्यारोप्यते तद्भावमिवापद्यते स उपादानशब्दः। एवं हि संग्रहे पठितः— वाचक उपादानः। (वाक्यपदीय 1.44, स्वोपज्ञवृत्ति)
24. विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः।। (वाक्यपदीय 1.1)
25. सर्वपरिकल्पातीततत्त्वं भेदसंसर्गसमतिक्रमेण समाविष्टं सर्वाभिः शक्तिभिर्विद्याऽविद्या प्रविभागरूपमप्रविभागं कालभेददर्शनाभ्यासेन मूर्तिविभागभावनया च व्यवहारानु पातिभिर्धर्माधर्मैः सर्वास्ववस्थास्वनाश्रितादिनिधनं ब्रह्मेति प्रतिज्ञायते।। (वाक्यपदीय 1.1, स्वोपज्ञवृत्ति)
26. एकस्य तत्त्वादप्रच्युतस्य भेदानुकारेणासत्यविभक्तान्यरूपोप–
ग्राहिता विवर्तः।। (वाक्यपदीय 1.1, स्वोपज्ञवृत्ति)
27. प्रत्यक्चैतन्येऽन्तःसन्निवेशितस्य...(वाक्यपदीय 1.1, स्वोपज्ञवृत्ति)
28. अपि प्रयोक्तुरात्मानं शब्दमन्तरवस्थितम्।
प्राहुर्महान्तमृषभं येन सायुज्यमिष्यते।। वाक्यपदीय 1.143
29. क) येनोच्चारितेन सास्नालाङ्गूलककुदखुरविषाण्यर्थसम्प्रत्ययो भवति स शब्दः। (महाभाष्य, पस्पशाह्निकम्, पृ. 17)
(ख) अर्थावसायप्रसवनिमित्तं शब्द इष्यते। (स्फोटसिद्धिः 3, पृ. 11)
30. अविकल्पितवाक्यार्थे विकल्पा भावनाश्रयाः।
अत्राधिकरणे वादाः पूर्वेषां बहुधा मताः।।(वाक्यपदीय 2.116)
31. भाषा के माध्यम से उनके अपने दार्शनिक प्रमेय साध्य हैं।
32. गुरवे भर्तृहरये शब्दब्रह्मविदे नमः।
सर्ववेदान्तसिद्धान्तसारामृतमयाय च।।
त्रैलोक्यगामिनी येन त्रिकाण्डी त्रिपदी कृता।
तस्मै समस्तविद्याश्रीकान्ताय हरये नमः।।(पुण्यराज)
33. एकोऽनवयवः शब्दः। (वाक्यपदीय 1.1)
34. यः क्रतुः शब्दसंज्ञकः। (वाक्यपदीय 1.52)
35. बुद्ध्यर्थादेव बुद्ध्यर्थे जाते तदपि दृश्यते। (वाक्यपदीय 3.3.33)
36. शब्दार्थयोरसम्भेदे व्यवहारे पृथक् क्रिया।
यतः शब्दार्थयोस्तत्त्वमेकं तत् समवस्थितम्।।(वाक्यपदीय 1.26
स्वो.वृ.में संग्रह के नाम से उद्धृत)
37. नया नाम रखने के दो कारण प्रतीत होते हैं। पहला यह है कि 'शब्द' (अर्थवाचक

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

इकाई) शब्द विभिन्न दर्शनों की अवधारणाओं से प्रदूषित हो गया था। उदाहरण के लिए मीमांसक वर्णों को तथा नैयायिक पदों को वाचक मानते हैं इसलिए उनके लिए वही शब्द हैं। दूसरा यह कि नये शब्द की व्युत्पत्ति मात्र से नवीन अवधारणा एक दम स्पष्ट हो जाए, जैसा कि ऊपर समझाया गया है।

38. क) वैयाकरणनागेशः स्फोटायनऋषेर्मतम्।
परिष्कृत्योक्तवांस्तेन प्रीयतां जगदीश्वरः।।(स्फोटवाद, उपान्त्य श्लोक पृ. 102)
ख) स्फोटोऽयनं परायणं यस्य सः स्फोटप्रतिपादनपरो वैयाकरणः। (तत्त्वबोधिनी 6.1 126, में उद्धृत)

39. अवङ् स्फोटायनस्य (अष्टाध्यायी 6.1.123)

40. किसी के होने पर दूसरे का होना अन्वय सम्बन्ध है। किसी के न होने पर दूसरे का न होना व्यतिरेक सम्बन्ध होता है। इन सम्बन्धों से कार्यकारणभाव सिद्ध होता है क्योंकि कार्य तथा कारण क्रमशः एक दूसरे के नियतपश्चाद्वृत्ति और नियतपूर्ववृत्ति होते हैं।

41. वर्णाः पदम्। (साहित्यदर्पण 2.2).

42. कारण से कार्य उत्पन्न होता है, इसलिए कारण सामग्री के जो गुण होते हैं वे कार्य में संक्रमित होते हैं (कारणगुणा हि कार्यगुणान् प्रारभन्ते।)। लाल सूत से लाल कपडा ही बन सकता है, पीला नहीं। इसे ही "कारणगुणप्रक्रमन्याय" कहते हैं।

43. शब्दबुद्धिकर्मणां विरम्य व्यापाराभावः। (साहित्यदर्पण, पञ्चम परिच्छेद, पृ. 297)

44. केचिन्मन्यन्ते। यो वायमुच्चार्यते क्रमवान् अवरः। कश्चिदन्यः अक्रमः शब्दात्मा बुद्धिस्थो विगाहते। तस्मादर्थप्रतिपत्तिः।कुतः। यथैवार्थान्तरनिबन्धनो नार्थान्तरं प्रत्याययति एवं स्वरूपनिबन्धनेनोत्सहते प्रत्याययितुम्।।
(भर्तृहरिकृता महाभाष्य टीका (दीपिका) प्रथमाह्निक पृ. 3)

45. भेदानुकारो ज्ञानस्य वाचश्चोपप्लवो ध्रुवः।
क्रमोपसृष्टरूपा वाक् ज्ञानं ज्ञेयव्यपाश्रयम्।।(वाक्यपदीय 1.86)

46. प्रकाशकानाम् भेदांस्तु प्रकाश्योऽर्थोऽनुवर्तते।(वाक्यपदीय 1.99)

47. प्रतिबिम्बं यथाऽन्यत्र स्थितं तोयक्रियावशात्।
तत्प्रवृत्तिमिवान्वेति स धर्मः स्फोटनादयोः।।(वाक्यपदीय 1.49)

48. प्रयोक्तुर्बाह्योऽर्थः स्वरूपं च प्रतीयते। शब्दैरुच्चरितैः..(वाक्यपदीय 3.3.1)

49. विषयत्वमनापन्नैः शब्दैर्नार्थः प्रकाश्यते।
न सत्तयैव तेऽर्थानामगृहीताः प्रकाशकाः।।(वाक्यपदीय 1.56)

50. इसे भर्तृहरिपदार्थ का अभिजल्पवाद कहते हैं—

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

सोऽयमित्यभिसम्बन्धाद् रूपमेकीकृतं यदा।
शब्दस्यार्थेन तं शब्दमभिजल्पं प्रचक्षते।।(वाक्यपदीय 2.128)

51. प्राकृतस्य ध्वनेः कालः स्फोटस्येत्युपचर्यते। (वाक्यपदीय 1.77)

52. (ऋग्वेदप्रातिशाख्य 2.1.105, निरुक्त 1.17)

53. न वर्णव्यतिरेकेण पदमन्यच्च विद्यते।
वाक्यं वर्णपदाभ्यां च व्यतिरिक्तं न किञ्चन।।(वाक्यपदीय 1.72)

54. पदभेदेऽपि वर्णानामेकत्वं न निवर्तते।
वाक्येषु पदमेकं च भिन्नेष्वप्युपलभ्यते।।(वाक्यपदीय 1.71)

55. इन नामों के अन्तर्गत वर्गीकरण वाक्यकाण्ड के टीकाकार पुण्यराज द्वारा किया गया है।

56. अविभक्तेऽपि वाक्यार्थे शक्तिभेदादपोद्धृते।
वाक्यान्तरविभागेन यथोक्तं न विरुध्यते।।(वाक्यपदीय 2.88)

57. यथैक एव सर्वार्थप्रकाशः प्रविभज्यते।
दृश्यभेदानुकारेण वाक्यार्थप्रत्ययस्तथा।।(वाक्यपदीय 2.7)

58. उपादायापि ये हेयास्तानुपायान् प्रचक्षते। (वाक्यपदीय 2.38)

59. असतश्चान्तराले याञ्छब्दानस्तीति मन्यते।
प्रतिपत्तुरशक्तिः सा ग्रहणोपाय एव सः।।(वाक्यपदीय 1.85)

60. उपायानां च नियमो नावश्यमवतिष्ठते। (वाक्यपदीय 2.38)

61. वा.प. 1.26 की स्वोपज्ञवृत्ति में संग्रह के नाम से उद्धृत।

62. यो वाऽर्थो बुद्धिविषयो बाह्यवस्तुनिबन्धनः।
स बाह्यं वस्त्विति ज्ञातः शब्दार्थ इति गम्यते।।(वाक्यपदीय 2.132)

63. जैसा कि नैयायिक मानते हैं।

64. खण्डनखण्डखाद्य।

65. अन्यथाप्रतिपद्यार्थं पदग्रहणपूर्वकम्।
पुनर्वाक्ये तमेवार्थमन्यथा प्रतिपद्यते।। (वाक्यपदीय 2.239)

66. यथाद्रव्यविशेषाणां परिपाकैरयत्नजाः।
मदादिशक्तयो दृष्टाः प्रतिभा तद्वतां तथा।। (वाक्यपदीय 2.148)

67. अभ्यासात् प्रतिभाहेतुः सर्वः शब्दोऽपरैः स्मृतः। (वाक्यपदीय 2.117)

68. क) अनागमश्च सोऽभ्यासः समयः कैश्चिदीर्यते।। (वाक्यपदीय 2.117)
ख) भावनानुगतादेतदागमादेव जायते।
आसत्तिविप्रकर्षाभ्यामागमस्तु प्रतीयते।। (वाक्यपदीय 2.151)

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

69. प्रमाणत्वेन तां लोकः सर्वः समनुगच्छति।
समारम्भाः प्रतायन्ते तिरश्चामपि तद्वशात्।। (वाक्यपदीय 2.147)

70. आण्डभावमिवापन्नः यः क्रतुः शब्दसंज्ञकः।
वृत्तिस्तस्या क्रियारूपा भागशो लभते क्रमम्।। (वाक्यपदीय 1.51)

71. प्रकाशकप्रकाश्यत्वं कार्यकारणरूपता।
अन्तर्मात्रात्मनस्तस्य शब्दतत्त्वस्य सर्वदा।। (वाक्यपदीय 2.23)

72. वाक्यपदीय 1.25

73. यथैव चक्षुरादयः सत्यामपि रूपप्रकाशनयोग्यतायां नानपेक्षिता आलोकसहाया रूपं प्रकाशयन्ति तथा शब्दाः सत्यामप्यर्थप्रकाशनयोग्यतायांस मयसहाया एवार्थं प्रकाशयन्ति।। (वाक्यपदीय 1.23, अम्बाकर्तृ, पृ.49)

74. सम्बन्धस्य न कर्तास्ति शब्दानां लोकवेदयोः।
शब्दैरेव हि शब्दानां सम्बन्धः स्यात्कृतः कथम्।।(वाक्यपदीय 1.26 स्वो.वृ. में संग्रह के नाम से उद्धृत)

75. इस सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद है कि भर्तृहरि वैखरी, मध्यमा तथा पश्यन्ती के अतिरिक्त परा को भी स्वतन्त्र रूप से मानते हैं अथवा नहीं। माना जाता है कि काश्मीर शिवाद्वयवादियों ने परा को स्वतन्त्र महत्ता दी जिनसे प्रभावित होकर नागेशभट्ट आदि बाद के वैयाकरणों ने परा को भी वागवस्थाओं में स्थान दिया। प्रो. अशोक अक्लूजकर ने वाक्यपदीय (1.144) की वृत्ति के आधार पर पश्यन्ती के दो रूप माने हैं–पश्यन्ती तथा पर पश्यन्ती।

76. वाक्यपदीय 1.134

77. वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक्संस्थाश्च निर्ममे।।(मनुस्मृति 1.21)

78. प्रस्तुत अंश संगीत नाटक अकादमी की पत्रिका "योगपर्व" में स्वयं लेखक के एक लेख "शब्दब्रह्म एवं शब्दयोग" की संक्षिप्त प्रस्तुति है।

79. भर्तृहरि ने मूलकारिका तथा अपनी वृत्ति में कुल मिलाकर 5 स्थानों पर इस शब्द का प्रयोग किया है। हर स्थान पर उन्होंने 'शब्दपूर्वयोग' शब्द का ही प्रयोग किया है (विवरण के लिए देखें Ferranto : 163–164)। फिर भी इस शब्द को पतञ्जलि के वाग्योग' का विकसित रूप मानने के कारण 'शब्दपूर्वयोग' के स्थान पर इस लेख में 'शब्दयोग' का प्रयोग किया गया है।

80. यस्तु प्रयुङ्क्ते कुशलो विशेषे शब्दान् यथावद् व्यवहारकाले।
सोऽनन्तमाप्नोति जयं परत्र वाग्योगविद् दुष्यति चापशब्दैः ।।
(महाभाष्य, पस्पशाह्निक पृ. 32–33)

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

81. प्राप्तरूपविभागाया यो वाचः परमो रसः।
यत्तत्पुण्यतमं ज्योतिस्तस्य मार्गोऽयमाञ्जसः ।।(वाक्यपदीय 1.12)

82. वाङ्मलानां चिकित्सितम्। (वाक्यपदीय 1.14)

सन्दर्भ ग्रन्थ

परात्रिंशिका अभिनवगुप्त कृत तत्त्वविवेकटीकोपेता. (सं.) मुकुन्दराम शास्त्री. कश्मीर सिरीज ऑफ टेक्स्ट एंड स्टडीज–18, 1918, (पुनः) अरोमा पब्लिशिंगहाउस, नईदिल्ली 1991.

महाभाष्यम् पतञ्जलिविरचितम्. प्रथम भाग संशोधक–भार्गवशास्त्री, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली (पुनः०) 2014.

साहित्यदर्पण–विश्वनाथकविराज (लक्ष्मी संस्कृत व्याख्या–कृष्णमोहन शास्त्री, 1955, चौखम्बा संस्कृत सिरीज आफिस, बनारस

काव्यादर्श–आचार्यदण्डी (संस्कृत हिन्दी व्याख्या–रामचन्द्रमिश्र, 1958), चौखम्बा विद्याभवन–वाराणसी

काव्यप्रकाश–आचार्यमम्मट (व्या. विश्वेश्वर, 1960), ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी

ध्वन्यालोक–आनन्दवर्धन (हिन्दी व्याख्या–जगन्नाथ पाठक, 1965), चौखम्बा विद्याभवन–वाराणसी.

वैयाकरणसिद्धान्तमञ्जूषा नागेशकृता.(सं.) शुक्ल, कालिका प्र. (1977) सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः,वाराणसी.

निरुक्तम् निघण्टुसमन्वितम् यास्कविरचितम्. सं. लक्ष्मण सरूप. दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास, 1998(1920)

महाभाष्यदीपिका भर्तृहरिकृता प्रथममाह्निकम्, (सं.) जोहानस् ब्रोंन्खॉर्स्ट (1987) भाण्डारकर–प्राच्यविद्यासंशोधनसंस्थान, पुणे।

सवृत्ति वाक्यपदीयद्वितीयकाण्डम् भर्तृहरिविरचितं पुण्यराजटीकोपेतम् (सं.) सुब्रह्मण्य अय्यर, को.अ. (1983). मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली.

शृङ्गारप्रकाशः भोजराजकृतः, प्रथमभाग (सं.–वी.राघवन्, 1998). संस्कृत तथा भारतीय अध्ययन विभाग, हार्वर्ड वि.वि.।

स्फोटवादः नागेशभट्टकृतः. वी.कृष्णमाचार्यरचित 'सुबोधिनी'सहितः. मद्रपुरीः द आड्यारलाइब्रेरी. 1946

स्फोटसिद्धिः मण्डनमिश्रकृता. ऋषिपुत्र परमेश्वरकृत गोपालिकोपेता. मद्रपुरीः मद्रपुरीय विश्वविद्यालयः. 1931

वाक्यपदीयम् ब्रह्मकाण्डम् (2006) रघुनाथशर्मविरचितया अम्बाकर्त्र्या सहितम्

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालयः, वाराणसी।

डे ,सुशीलकुमार (हिन्दी अनु.) वर्मा, मायाराम(1988) संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास. बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

Iyer, K.A.S. (1969) Bhartṛhari: A study of Vākyapadīya in the light of Ancient Commentaries. Poona : Deccan College,

Bronkhorst, J. 1995. "Grammar as the door to liberation". Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute 76: 97–106.

Shukla, Balram (2019) शब्दब्रह्म एवं शब्दयोग Yoga Parva-4, June-2019, Sangit-NatakaAkademy-Delhi.

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

यशदेव शल्य की तुलनात्मक दर्शन की अवधारणा

अनिल कुमार तिवारी

विभिन्न दर्शनों में तुलना करने का सामान्य अर्थ है उनके प्रत्ययों और विचारों के बीच संबंधों का उद्घाटन करना। परंतु तुलनात्मक दर्शन का नाम सुनते ही कुछ आशंकायें उपस्थित होती हैं :

1. तुलना में समानता और असमानता का कथन होता है। समानता मात्र में किसी की कोई रुचि हो नहीं सकती और असमानता का आख्यान ऐसी समस्याओं को जन्म देता है जिनका समाधान असंभव है।

2. तुलनात्मक दर्शन कोई गंभीर दर्शन नहीं है। यह विभिन्न दर्शनों के बीच मात्र समानता और असमानता का उद्घाटन है जो किसी गहन विचारणा की अपेक्षा नहीं रखता।

3. प्रत्येक दर्शन एक विशिष्ट संस्कृति की उपज है और प्रत्येक संस्कृति का उद्भव भिन्न या विपरीत परिवेश में होता है; इसलिए उनमें उपजे दर्शनों में कोई उपयोगी और सार्थक तुलना असंभव है।

4. अपने परिवेश के बाहर प्रत्येक दर्शन अपरिचित होता है। अपरिचितों में किसी सार्थक संवाद की संभावना क्षीण होती है।

5. तुलना में (सापेक्षिक) मूल्याँकन की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। प्रत्येक दर्शन एक दृष्टि–विशेष होता है और अपनी समग्रता के साथ अपने विचारों के वर्तुल में अधिष्ठित होता है। इसलिए उनका मूल्याँकन अस्पष्टता को न्यौता देता है।

6. तुलनात्मक दर्शन अव्यावहारिक है, क्योंकि सार्थक तुलना हेतु तुलनीयों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और परम्पराओं का समग्रता में बोध अपेक्षित है जो किसी व्यक्ति विशेष में दुर्लभ है।

उपर्युक्त आशंकाओं के होते हुये भी न केवल विचारकों की तुलनात्मक दर्शन में प्रवृत्ति होती है बल्कि इस प्रवृत्ति की उपयोगिता के पक्ष में तर्क भी प्रस्तुत किए जाते हैं; जैसे –

उन्मीलन – वर्ष 36, अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2022
ISSN-0974-0053
U.G.C. Care List : Arts & Humanities, SI.No. 310

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

1. तुलना एक स्वाभाविक मानसिक क्रिया है जो हमारे विचार और बोध में अनुस्यूत है। दर्शन के विचारक इससे अछूते नहीं रह सकते।

2. किसी नये दर्शन को समझने के लिए उसे परिचित दर्शन से तुलना करके समझने का प्रयास किया जाता है। इस तरह परिचित और अपरिचित दर्शनों में समानता–असमानता का उद्घाटन न केवल नये विचारों को सीखने में सहायक होता है बल्कि परिचित विचार को और गहराई से सीखने का अवसर देता है।

3. दर्शनों के बीच तुलना करने से नये विचारों का जन्म होता है जो तुलना के अभाव में प्रायः असंभव होता।

4. दर्शनों में समानता का उद्घाटन उनके सिद्धांतों की स्वीकार्यता को व्यापक बनाता है; जैसे किसी वैज्ञानिक सिद्धान्त की स्वीकृति तभी होती है जब उसे अलग–अलग परिस्थितियों में प्रदर्शित किया जा सके और प्राप्त परिणामों में समानता हो।

5. दर्शनों की तुलना करने से उनमें किसी आंतरिक विसंगति को देखने–परखने का अवसर मिलता है जो कि विचारों के संवर्धन और परिमार्जन के लिए महत्त्वपूर्ण है।

6. तुलनात्मक दर्शन में पूर्वाग्रहों और भ्रांत धारणाओं को निराकृत कर विचारों को सही परिप्रेक्ष्य में देखने की प्रविधि मिलती है। एक–दूसरे को ठीक से न समझने के कारण ही असहिष्णुता, घृणा, विद्वेष और विरोध का भाव आता है। तुलनात्मक दर्शन विभिन्न संस्कृतियों में परस्पर–समझ को बढ़ाकर विश्व शांति का मार्ग प्रशस्त कर सकता है।

उपर्युक्त द्वन्द्वों के परिप्रेक्ष्य में यशदेव शल्य जी (26 जून 1926–31 जनवरी 2021) ने तुलनात्मक दर्शन संबंधी रोचक प्रस्थापना की है। उनके विचारों पर चिंतन करने के पूर्व, वर्ष 1951 में तुलनात्मक दर्शन के क्षेत्र में विश्व पटल पर उठाए गए एक महत्त्वपूर्ण कदम का उल्लेख करना उचित होगा। इस वर्ष "फिलोसोफी ईस्ट एण्ड वेस्ट : ए क्वार्टर्ली जर्नल ऑफ ओरिएंटल एण्ड कंपैरेटिव थॉट" शीर्षक से हवाई विश्वविद्यालय के दर्शन विभाग ने एक जर्नल का प्रकाशन प्रारम्भ किया। इस जर्नल को आज "फिलोसोफी ईस्ट एण्ड वेस्ट : ए क्वार्टर्ली ऑफ कंपैरेटिव फिलोसोफी" कहा जाता है। इस जर्नल का उद्देश्य एंग्लो–अमेरिकन दर्शन में शोधरत लोगों में गैर–पाश्चात्य दार्शनिक परम्पराओं के बारे में अकादमिक जागरूकता को

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

बढ़ावा देना रहा है। विश्व के अनेक भागों में विकसित चिंतन परंपरा के लिए भी यह एक महत्त्वपूर्ण अवसर बना जिससे वे वैश्विक पटल पर अपनी अवधारणाओं को रख सकें। शुरुआती अंकों में तुलनात्मक दर्शन के स्वरूप और उसकी उपयोगिता पर गहन चिंतन हुआ। इसके पहले वॉल्यूम के पहले अंक के पहले तीन पृष्ठों पर 'ऑन फिलोसोफिकल सिंथेसिस' शीर्षक से क्रमशः जॉन डीवी, एस. राधाकृष्णन और जॉर्ज संटयाना का एक–एक पृष्ठ का उद्‌बोधन छपा (ऑन फिलोसोफिकल सिंथेसिस, 1951, पृ. 3–5)।

जॉन डीवी ने प्रस्ताव किया कि ईस्ट–वेस्ट के वास्तविक संश्लेषण में इस जर्नल की मुख्य भूमिका यह हो सकती है कि यह इस विश्वास को समाप्त करने में सहायक हो कि विचार के क्षेत्र में वस्तुतः कोई ईस्ट–वेस्ट है जिसका संश्लेषण करना है। ईस्ट–वेस्ट का विभाजन राजनैतिक है न कि सांस्कृतिक। संस्कृतियों का विकास परस्पर आदान–प्रदान से हुआ है और इसके केंद्र में अधिष्ठित है – दर्शन। इस दृष्टि से तुलनात्मक दर्शन की मुख्य भूमिका विभिन्न संस्कृतियों में उपलब्ध दर्शन के अंतर्संबंधों को उजागर करना है। इसके माध्यम से विभिन्न दार्शनिक विचारों की जटिलताओं और विशिष्टताओं के बारे में समझ को बढ़ाकर वैश्विक स्तर पर उनके महत्त्व को रेखांकित करना है। एस. राधाकृष्णन के अनुसार पूर्व और पश्चिमी दर्शन के बीच न तो विरोध हो सकता है न ही उनका विलय, दोनों अपनी समन्वित संरचना को बरकरार रखते हुये एक–दूसरे से लाभान्वित हो सकते हैं। वे पूर्व की आध्यात्मिकता और पश्चिम की बौद्धिकता के संवाद में दर्शन के क्षेत्र में वैश्विक दृष्टि के उद्‌भव की संभावना देखते हैं। उनका मंतव्य है कि तुलनात्मक दर्शन किसी विश्व दर्शन को भले ही न जन्म दे सके लेकिन इसमें एक विश्व–दृष्टि उत्पन्न करने की क्षमता अवश्य है। आखिरकार दर्शन मानवीय चेतना की सर्जना है जो अविच्छिन्न मानवीय अनुभव से अनुप्राणित होती है। जॉर्ज संटयाना ने पूर्वी और पश्चिमी दर्शन के प्रस्थापनों को मौलिक मानते हुये उन्हें अपने–आप में स्पष्ट और विशिष्ट कहा। साथ ही वे यह भी मानते हैं कि इनमें किसी संश्लेषण या संयोजन का प्रयास उन्हें धुंधला और सारहीन कर सकता है। किसी चीज के विकास के नैसर्गिक क्रम में उत्पन्न चीजों में भिन्नता स्वाभाविक है और विकास क्रम की उन्नति के साथ परिणामों में अधिकाधिक विविधता और समृद्धि आती है। परंतु इनमें मौलिक समानता या कहें कि बुनियादी एकता होती है, और

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

जैसे–जैसे इनका विकास होता है, वैविध्य का प्रादुर्भाव होता रहता है। यह विविधता ही दार्शनिक सौंदर्य की जननी है और इसी का उद्घाटन तुलनात्मक दर्शन को प्रासंगिक बनाएगा न कि पूर्वी और पश्चिमी दर्शनों के मध्य किसी कृत्रिम मेल–जोल या बौद्धिक संयोजन का प्रयास।

इस प्रकार जॉन डीवी जहाँ विश्व स्तर पर ऐतिहासिक और सांस्कृतिक अंतर्संबंधों की ओर संकेत करते हुये पूर्व और पश्चिम के भेद को प्रायः राजनैतिक मानते हैं, वहीं उनका यह भी मंतव्य है कि तुलनात्मक दर्शन सांस्कृतिक अंतर्संबंधों को उद्घाटित कर विविधता और सह–अस्तित्व का पथ प्रदर्शक हो सकता है। एस. राधाकृष्णन जहाँ विचार परम्पराओं के व्यक्त वैविध्य का कारण ऐतिहासिक परिवेश को मानते हैं, वहीं उनका यह भी विश्वास है कि इन परम्पराओं की बुनियाद अविच्छिन्न मानवीय अनुभव पर अधिष्ठित है, और इसीलिए इनमें समन्वय की संभावना विद्यमान है। जॉर्ज संटयाना इसी बुनियादी एकता की ओर संकेत करते हुये कहते हैं कि विचार परम्पराओं में विविधता विकास के परिणामस्वरूप आती है। अपने उत्स में चिंतन एक हैं, परिवेश की विशिष्टता उनकी अभिव्यक्ति की अनन्यता की जननी है। अतः विविधता प्रायः अभिव्यक्ति की है न कि विचारगत। इस तरह उपर्युक्त तीनों विचारक किसी मूलगामी वैचारिक एकता की ओर संकेत करते प्रतीत होते हैं।

यशदेव शल्य दर्शन को एक मूलगामी (प्रत्यङ्मुख, पराङ्मुख के विपरीत) ज्ञान–विधा के रूप में परिभाषित करते हैं जो अपनी गति में अपने मूल की ओर, अपने आरम्भ की ओर, अतिक्रमण करता है। 'अतिक्रमण' प्रत्यय को खोलते हुये शल्य जी कहते हैं कि अतिक्रामी वह है जो "प्राकृतिक चेतना का विषय नहीं हो सकता किन्तु जो इस चेतना के विषयों की प्रतिष्ठा के रूप में इनसे संकेतित होता हो, अथवा जो इन विषयों की पूर्वापेक्षा के रूप में इनका निर्धारक हो। जैसे द्रष्टा दृश्यों से अतिक्रामी होता है, कर्त्ता कर्म से अतिक्रामी होता है" (शल्य, यशदेव शल्य समग्र , 2017, पृ. 459)। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि दृश्य और कर्म क्रमशः द्रष्टा और कर्त्ता के संकेतक हैं, उनके अस्तित्व के निर्धारक नहीं। इसके उलट द्रष्टा और कर्त्ता ही क्रमशः दृश्य और कर्म के निर्धारक हैं। इस अर्थ में दर्शन ही अपने मौलिक रूप में अपने विकास के सोपानों का निर्धारक है और इसी प्रयत्न में वह स्वयं को निर्धारित करते हुये आत्म–संकेतित भी होता है। यह आत्मोन्मुखता ही

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

उसे ज्ञान की अन्य विधाओं से पृथक् करती है। ज्ञान की अन्य व्यवस्थाएँ अपने विषय की ओर उन्मुख होती हैं। विषय का रूप और आकार उनकी प्रकृति का निर्धारण करता है। जैसे भौतिक विज्ञान भौतिक (जड़) तत्त्वों की मौलिक संरचना, देश–काल में उनकी गति और व्यवहार तथा उससे संबन्धित ऊर्जा और समतुल्य बल का विश्लेषण और अध्ययन करता है। इसलिए ऐसे अध्ययन में एक प्रकार की वस्तुनिष्ठता अपेक्षित है। यहाँ ज्ञान अपना अतिक्रमण विषय में करता है। इसके विपरीत दर्शन में ज्ञान अपना अतिक्रमण अपनी आत्मोन्मुख गति में ही करता है। अर्थात् दर्शन में ज्ञान का आविर्भाव अवधारणाओं में, अवधारणाओं का चिद्वृत्तियों में, चिद्वृत्तिरूप उपाधियों का निरुपाधिक चैतन्य में होता है। इस प्रकार दर्शन गोचर–प्रत्यय–भावना और मनन लोक की सृष्टि होते देखते हुये विमर्श और मनन करता है (शल्य, 2017, पृ. 15)।

दार्शनिक ज्ञान के स्वरूप को समझने का जो प्रारूप शल्य जी ने "अवधारणा–चिद्वृत्ति–निरुपाधिकचैतन्य" रूप में प्रस्तुत किया उसे और स्पष्टता से समझने में भर्तृहरि के भाषा–दर्शन संबंधी विचार उपकारक हैं। जिस प्रकार भर्तृहरि शब्द के व्यक्त स्वरूप (वैखरी) का अखण्ड शब्द (परा) से संबंध दिखाते हैं उसी प्रकार शल्य जी दार्शनिक अवधारणाओं का उत्स मानवीय चेतना के मूल में देखते हैं। प्रो. देवेन्द्र नाथ तिवारी के अनुसार, भर्तृहरि के दर्शन का मुख्य प्रयोजन यह दिखाना है कि भाषा का व्यक्त रूप मानवीय संज्ञानात्मक चेतना (ज्ञान) के निरुपाधिक (अखण्ड–स्फोट) स्वरूप से कैसे सम्बन्धित है (तिवारी द. न., 2008)। भर्तृहरि के अनुसार अखण्ड या निरुपाधिक चैतन्य और भाषा के व्यक्त रूप में स्वरूपगत समानता है, दोनों शब्दस्वरूप हैं, संज्ञान शब्दानुविद्ध है और शब्द संज्ञान से अनुप्राणित। विभिन्न भाषा–समुदाय अखण्ड शब्द के ही विविध व्यक्त रूप हैं। वैखरी के माध्यम से ही परा व्यक्त होती है। परा क्रमशः पश्यंती और मध्यमा से घनीभूत होकर वैखरी रूप में व्यक्त होती है। व्यक्त शब्द ही विमर्श का साधन बनते हैं। अभिव्यक्ति की वस्तुनिष्ठता का निर्धारण दो प्रकार से हो सकता है : (1) अभिव्यक्ति से इतर बाह्य तथ्य के निर्देश द्वारा, और (2) अभिव्यक्ति की आंतरिक संरचना में चेतना की मूलगामी प्रवृत्ति के निर्देश द्वारा। पहला प्रयास प्राकृतिक विज्ञान की विधि में दिखता है और दूसरी प्रवृत्ति दर्शन की विधि में। मानवीय चेतना के इन दोनों प्रयासों में जहाँ पहले में सार्वभौम

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

सहमति की अवाप्ति अपेक्षाकृत सरल होती है क्योंकि चेतना से इतर तथ्य का अवलंबन होता है, वहीं दूसरी विधा में ऐसी अपरिहार्यता न होने कारण दृष्टि की संभावनाओं का विस्तार होता है।

कृष्ण चन्द्र भट्टाचार्य के अनुसार कोई विषयवस्तु अभिलाप्य/निर्वचनीय (speakable) होकर ही सैद्धांतिक चेतना (theoretic consciousness) के विमर्श का भाग बनती है। अभिलाप्य को समझना ही इस चेतना का स्वरूप है। अभिलाप्य वस्तु की दशा के अनुसार विमर्श के चार स्तर माने गए हैं : आनुभविक विमर्श, शुद्ध वस्तुनिष्ठ विमर्श, आध्यात्मिक विमर्श और अतींद्रिय विमर्श (भट्टाचार्य, 2008, पृ. 463–479)। आनुभविक विमर्श (empirical thought) में 'वस्तु' का 'विचार' से भिन्न अस्तित्व संकेतित होता है और अनुभूत वस्तु का अर्थ प्राकृतिक विज्ञान की सैद्धान्तिक चेतना की विषयवस्तु के रूप में व्यक्त होता है। आनुभविक विषय के अवबोध में 'निर्वचन' उपचार–मात्र है और अनुभव–बाह्य तथ्य का संकेत उसका अनिवार्य भाग है। वस्तुतः 'तथ्य' वैज्ञानिक अन्वेषण का विषय इसी अर्थ में है कि उसकी सत्ता प्रेक्षक से स्वतंत्र रूप में स्वीकृत है। वहीं दार्शनिक विमर्श की विषय–वस्तु को अभिलाप्यता (speakability) से पृथक् करके नहीं देखा जा सकता है। यहाँ तक कि अनभिलाप्य/अनिर्वचनीय का संकेत भी दर्शन में अभिलपन/निर्वचन क्रिया के द्वारा ही होता है।दार्शनिक विषय का विषयी से अनिवार्य संबंध इसकी अभिलपन क्रिया से अवियोज्यता के संबंध में देखा जा सकता है, इसलिए दर्शन की विषयवस्तु विषयी के संदर्भ में ही अर्थवान होती है– Philosophy deals with the object that is intelligible only in reference to the subject (भट्टाचार्य, 2008,पृ. 472)। विषयी (subject) सैद्धान्तिक चेतना में अभिलपन क्रिया (speaking function) के उत्स के रूप में भाषा में 'अहम्' प्रत्यय से संकेतित होता है। इस प्रकार, कृष्ण चन्द्र भट्टाचार्य कहते हैं – दार्शनिक विषयों में संरचनागत वस्तुनिष्ठता होती है जो शुद्ध वस्तुनिष्ठ विमर्श (आत्म–भिन्न वस्तु का चिंतन), आध्यात्मिक विमर्श (आत्म–चिंतन) और अतींद्रिय विमर्श (निरपेक्ष का चिंतन) में भाषा के माध्यम से संकेतित होती है। दर्शन में स्वीकृत विषयों का संकेत शाब्दिक (literal) या प्रतीकात्मक (symbolic) हो सकता है। शाब्दिक संकेत स्वभिन्न वस्तु और स्व के चिंतन में संभव होता है, सत् मात्र के चिंतन

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

में प्रतीकात्मकता ही एकमात्र उपाय है। यह भी कि बाह्य तथ्य के निर्देश के अभाव में दार्शनिक कथन और कथ्य के बीच संबंध की स्पष्टता के निर्धारण की अपरिमित संभावत्ता विद्यमान होती है।

दार्शनिक चिन्तन मानवीय चेतना की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति है। दर्शन में अनुभव एवं अनुभूत वस्तु के स्वरूप का समग्रता से अध्ययन किया जाता है। विषय–वस्तु से सम्बन्धित सामान्य प्रश्न का विशिष्ट उत्तर देना इस विधा की विशिष्टता है। एक दर्शन दूसरे दर्शन से मात्र प्रश्न की सार्थकता पर सहमत हो सकता है। किसी उत्तर या तर्क पर सहमति दार्शनिकता का अवसान है। प्रत्येक दर्शन विशिष्ट और दूसरे दर्शन के लिए उत्प्रेरक है। प्रश्न से समाधान तक की यात्रा में चेतना अपने परिष्कार हेतु अंतर्दृष्टियों का सृजन करती है। सृजित अंतर्दृष्टियों की एक सुगठित प्रत्ययात्मक संरचना का ही नाम दार्शनिक संप्रदाय या दर्शन विशेष है। इसका यह अर्थ नहीं कि एक ही दार्शनिक संप्रदाय में मतभेद नहीं होता। बौद्ध दर्शन में अनेक संप्रदायों का विकास इसका स्पष्ट उदाहरण है। वेदान्त–सूत्र पर व्याख्या के भेद से ही अनेक वेदान्त संप्रदायों का विकास हुआ। 8वीं सदी के मीमांसक आचार्य कुमारिल और प्रभाकर के मतभेद प्रसिद्ध हैं। 16वीं सदी के नैयायिक रघुनाथ शिरोमणि अपने प्राचीन आचार्यों से कई बातों में असहमत हैं। परन्तु मतभेद के होते हुये भी उनमें कुछ मौलिक सहमति के कारण उन्हें एक ही दार्शनिक संप्रदाय के अन्तर्गत माना जाता है।

यशदेव शल्य के अनुसार प्रत्येक "दार्शनिक एक ताना तनता है और यह ताना उसका संसार है"। ये ताने वे मौलिक विचार हैं जिस पर किसी दर्शन की स्थापना होती है। इन तानों को तार्किक बाने से बुनकर दार्शनिक परम्परा की सृष्टि की जाती है। एक दर्शन के ताने दूसरे दर्शन से अलग होते हैं, इसलिए वे अलग पहचान रखते हैं। जब एक दार्शनिक दूसरे दार्शनिक की आलोचना क़रता है तो यह दिखाता है कि दूसरे दार्शनिक ने अपने ताने के नियमों को ठीक से नहीं समझा और कुछ असंगत रचनाएँ कर डाली (शल्य, 2017, पृ. 4)। असंगति का सबसे अतार्किक स्वरूप है वादतोव्याघात : अपनी दृष्टि के ही विरुद्ध प्रस्तावना करना। इसका उद्घाटन तभी संभव है जब उस दृष्टि के मौलिक सिद्धांतों का निर्दुष्ट कथन और मूल्याँकन हो। यही दार्शनिक चिंतन की मूलगामिता है।

शल्य जी द्वारा प्रस्तावित दर्शन की मूलगामिता को स्पष्टता से समझने के लिए दर्शन के बारे में नन्द किशोर देवराज का अभिमत भी

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

उल्लेखनीय है जिसके अनुसार सम्पूर्ण दार्शनिक गतिविधि एक अर्थ में विभिन्न अवधारणाओं, लक्षणों और व्याख्याओं की तुलना और मूल्याँकन ही है। इसका चरम लक्ष्य मानवीय अनुभव को सर्वाधिक उपयुक्त अवधारणा, लक्षण और विवरण के साथ समझना है (देवराज, 1967, पृ. 52)। देवराज जी के अनुसार तुलनात्मक दर्शन का मुख्य उद्देश्य विभिन्न संस्कृतियों में पल्लवित–पुष्पित दर्शन को लोगों के समक्ष स्पष्टता से रखना है। इस प्रयास में विभिन्न परिवेश के दार्शनिक प्रस्तावों में संवाद स्थापित करने की चुनौती होती है। इस चुनौती का निर्वाह दार्शनिक प्रविधि में मूलगामिता, तुलना और मूल्याँकन की प्रवृत्ति के कारण संभव होता है।

दर्शन चूंकि संस्कृति का एक भाग है, विश्व की विभिन्न संस्कृतियों में जन्मे और पनपे दर्शनों के बीच अन्तर होना स्वाभाविक है। परंतु इस वैविध्य के मूल में अंतर्हित अभिन्नता है। वैचारिक परंपरा के विकास क्रम में एक संस्कृति के लोगों का दूसरी संस्कृति के लोगों से संपर्क होने पर तुलना करने का अवसर स्वभावतः उत्पन्न होता है। दो या दो से अधिक विचारों या वस्तुओं में समानता–असमानता का कथन करना ही तुलना है। तुलना क्यों और किस आधार पर की जा रही है इससे यह निर्धारित होता है कि तुलनीयों में समानता या असमानता के किस पक्ष को केंद्र में रखना है। उदाहरण के लिए खिड़की के पर्दे और सोफा के रंग की तुलना करने के पीछे घर की आंतरिक सज्जा संबंधी हमारी समझ और पसन्द ही निर्णायक होती है – समान रंग का रखना है या भिन्न। पड़ोसी की गाड़ी या घर से अपनी गाड़ी या घर की तुलना के पीछे उससे कमतर न रहने की अहंता कारण हो सकती है। यशदेव शल्य कहते हैं कि तुलना करने की प्रेरणा "भिन्नों में किसी समानता के दर्शन" से हो सकती है : पर्दे और सोफे का "रंगीन" होना, किसी वस्तु का "गाड़ी" या "घर" होना। उनके अनुसार अभेद ही भेद का धारक है – "तुलनीयों की किसी एक मूल में प्रतिष्ठा है"। यही मौलिक सम्बन्ध तुलना को अर्थवान बनाता है, समानता–असमानता को वस्तुगत आधार प्रदान करता है। शल्य जी तुलनात्मक दर्शन की स्थापना इसी आधार पर करते हैं। यह मूल काल्पनिक या आरोपित न होकर वास्तविक है। इसकी वास्तविकता का आरंभिक बोध प्रातिभ होगा जिसकी अनुव्यवसायात्मक पुष्टि अपेक्षित है। तुलनात्मक दर्शन में विमर्श का उद्देश्य इसी "दार्शनिक मूल" का अनुसंधान और परीक्षण है जो दार्शनिक परम्पराओं

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

की भिन्नता को धारण करता है। शल्य जी के अनुसार "दर्शन में इस प्रकार का कोई तुलनात्मक अध्ययन नहीं हुआ है" (शल्य, यशदेव शल्य समग्र, 2017, पृ. 75)। हेगल के निरपेक्ष प्रत्यय और शंकर के ब्रह्म में, कान्ट के निरपेक्ष आदेश और गीता के निष्काम कर्म–योग की तुलनाएँ उनमें कुछ समानता या असमानता दिखाने के लिए अवश्य की गयी परन्तु उनकी प्रकट भिन्नताओं के मूल में अंतर्निहित समानता या उनकी दार्शनिक संरचना के किसी भाग में निहित समरूपता के आधार पर उनमें मौलिक अभिन्नता दिखाने का प्रयास नहीं दिखता। अब तक के प्रयास पर चुटकी लेते हुये वे कहते हैं यह 'ट्री' (जिसे यूरोपियन 'त्री' बोलते हैं) और 'स्त्री' शब्द में तुलना करने जैसा है क्योंकि दोनों बोलने में एक जैसे (phonetically similar) लगते हैं।

दार्शनिक ज्ञान में किसी मौलिक आधार के अन्वेषण हेतु शल्य जी ने तीन संभावनाओं पर विचार किया है :

1. अध्ययन विधा के विकास क्रम में दर्शन का विचार क्षेत्र संकुचित होकर अधिक शुद्ध रूप में प्रकट हुआ है। विषय की समरूपता और विवेचना की पद्धति–विशेष की उपयुक्तता/सुविधा के कारण विज्ञान, कला, धर्म, नीति व्यवस्था आदि ने प्रायः अपनी स्वतंत्र पहचान बना ली। तुलनात्मक दर्शन विभिन्न विधाओं में तुलना के द्वारा दार्शनिक विधा को स्पष्ट पहचान देने का कार्य करता है।

2. भिन्न संस्कृतियों में भिन्न–भिन्न प्रकार की अभीप्सायें (या मूल्य दृष्टियाँ) दिखाई देती हैं। जैसे आधुनिक पाश्चात्य संस्कृति में वैज्ञानिक अनुसन्धानों के प्रभाव और व्यक्तिमूलक विचारधारा पर आधारित सामाजिक संरचना का नियोजन दिखाई देता है। इन दो अभीप्साओं के विपरीत सुकरात, प्लेटो, और प्लोटाइनस में ऐसे आध्यात्मिक तत्त्व के साक्षात्कार की अभीप्सा दिखाई देती है जो बुद्धिग्राह्य है। ग्रीक और यूरोपीय दार्शनिक परंपरा के विपरीत प्राचीन भारतीय संस्कृति में लौकिक ज्ञान को औपाधिक मानकर उपाधियों के अतिक्रमणपूर्वक निरुपाधिक ज्ञान के सिद्धि की अभीप्सा दिखाई देती है। इसी कारण से ये तीनों अलग–अलग दर्शन हैं।

3. एक ही संस्कृति में विकसित अनेक दार्शनिक संप्रदायों में भी परस्पर तुलनात्मक अध्ययन कर उनमें अंतर्हित मूल संरचना और अभिनिवेशों का अन्वेषण उपयोगी होता है।

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

आधुनिक भारतीय विचार परंपरा को देखते हुये शल्य जी ठीक ही कहते हैं कि उपर्युक्त में दूसरे प्रकार की तुलना यहाँ पर्याप्त हुई है। इसमें भारतीय और पाश्चात्य दर्शनिकों में कतिपय समान तत्त्वों का अन्वेषण किया गया है। परंतु इस प्रयास की गंभीर समस्या यह थी कि इसमें चयनित विचारों को उनके जीवंत परिवेश से उठाकर एक यांत्रिक समरसता दिखाई गई। इससे उनकी सांस्कृतिक विलक्षणता तिरोहित हो गयी। शल्य जी के अनुसार तुलनात्मक दर्शन का मुख्य उद्देश्य उस मूलप्राण का प्रतिभास पाना और उसे उद्घाटित करना है जो अपने को अनेक दार्शनिक विलक्षणताओं में प्रकट करता है। अर्थात् तुलनात्मक दर्शन को मूल और लक्षण दोनों को देखना होता है। जैसे वसुबंधु और बर्कली के बीच बाह्यार्थ के निषेध को लेकर महत्त्वपूर्ण समानता है परंतु ज्योंही बाह्यार्थ और विज्ञप्ति के स्वरूप तथा बाह्यार्थ के निषेध के प्रयोजन की बात आती है तो यह समानता सतही लगती है। यह समानता "तार्किक संरचनागत" अवश्य है परंतु भेद कहीं गहरे अभीप्सामूलक हैं। ये भेद तार्किक संरचना को भी प्रभावित करते हैं (शल्य, यशदेव शल्य समग्र , 2017, पृ. 78)। प्रश्न यहाँ यह है कि ज्ञान के प्रस्तुत विषय में ज्ञान के अपने तत्त्व के अतिरिक्त क्या है? उदाहरण के लिए किसी सभागार के ग्राह्य तत्त्व संरचना इत्यादि और इनका दर्शक द्वारा विनिश्चय के अलावा दर्शक से स्वतन्त्रता का भाव भी है। संरचनात्मक गुण एवं विनिश्चय का संबंध तो अवश्य दर्शक से है परंतु दर्शक से स्वतन्त्रता का भाव सभागार की पृथक् सत्ता का संकेतक है।

जहाँ तक दर्शक से सभागार की स्वतन्त्रता के भाव का प्रश्न है, वसुबंधु और बर्कली ने समान उत्तर दिया है। परंतु रूप और विनिश्चय को लेकर भी समानता या मतभेद हो सकता है। विज्ञप्ति से अलग विज्ञापित की कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है; इतने मात्र से शेष बातें गौण नहीं हो जातीं। शल्य जी के अनुसार बर्कली विज्ञप्ति, विज्ञापन क्रिया तथा उसकी अंतर्वस्तु के बीच भेद की ओर कोई ध्यान नहीं देता है तथा दर्शक से असंबंध में ही दृश्य में अशेषता मान लेता है। माइनोंग और हुसर्ल विज्ञापन–क्रिया और अंतर्वस्तु में भेद करते हुये भी विज्ञापन–क्रिया और उसकी अंतर्वस्तु की ओर उन्मुखता को सम्पूर्ण विज्ञप्ति मान लेते हैं। दूसरी ओर वसुबंधु विज्ञापन–क्रिया और अंतर्वस्तु में भेद तथा विज्ञप्ति की वस्तु–उन्मुखता के अलावा उन्हें विज्ञान के बाहर देखता है, विज्ञान की वृत्तियाँ उसका उपचार मात्र हैं।

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

इसीलिए बर्कली जहाँ साधारण अनुभव को स्वीकारता है वहीं वसुबंधु उसे भी बाह्यार्थ रूप में असत् घोषित कर देता है। विज्ञप्ति की कल्पना–प्रवृत्ति भी बाह्यार्थ है। इस प्रकार वसुबंधु बर्कली से कहीं आगे बढ़कर निषेध–तर्कणा के अंतिम छोर तक पहुँचता है।

वसुबंधु की उपर्युक्त मूलगामिता तर्क के पैनेपन के कारण उतना न होकर विषय–ज्ञान को उसकी समग्रता में देखने के कारण है। वास्तव में दर्शन की विश्वदृष्टि की विशेषता ही विषय–वस्तु को समग्रता में देखना है। जनसाधारण की विश्वदृष्टि में भी दार्शनिक समग्रता की प्रवृत्ति होती है परंतु उसमें एक अनगढ़पन होता है। शल्य जी के अनुसार दर्शन की विश्वदृष्टि और सामान्य विश्वदृष्टि में वही संबंध होता है जो तराशी गयी मूर्ति और अनगढ़ पत्थर में या उद्यान और वन में होता है (शल्य, यशदेव शल्य समग्र , 2017, पृ. 201)। वन का प्राकृतिक समायोजन उद्यान के मानवीय समायोजन से पृथक् होता है। उद्यान का प्रत्येक अवयव (फल, फूल, पौधे आदि) एक मानवीय कार्ययोजना का परिणाम है, उसका संगठन और सामंजस्य प्रयोजन की अवधारणा के अनुरूप है। वसुबंधु का सत्ता–बोध परमार्थ की थाह लेने की अभीप्सा से प्रेरित हो एक तार्किक आयोजन का आधार बनता है। हेगल जैसे पश्चिमी दार्शनिक भी अपने दर्शन को समग्रता के केंद्र में अधिष्ठित करते हैं परंतु वसुबंधु की तरह बाह्यार्थ का निषेध नहीं करते हैं। इसका मूल कारण सांस्कृतिक अभीप्साओं में मौलिक अंतर होना है। भारतीय संस्कृति व्यक्ति–जीवन की औपाधिकता को अतिक्रमित कर निरुपाधिक रूप में सत् को देखने में मूल्य देखती है। मूल्य की स्थिति साध्यता में है। इसीलिए दर्शन का कार्य साध्य, साधन और साधक के स्वरूप को समझना माना गया है। पश्चिम का परमार्थ बुद्धिरूप है। विषेशरूप से ईसाई विश्वदृष्टि ईश्वर और मानव दोनों को परमार्थ मानती है, इसलिए वसुबन्धु की भांति बाह्यार्थ का निषेध करने में उस सीमा तक नहीं जा सकती जहाँ ग्राह्य–ग्राहक भाव ही बाह्यार्थ होकर विगलित हो जाय।

शल्य जी दिङ्नाग और काण्ट में भी संक्षेप में तार्किक संरचनागत और अभीप्सागत समानता और भेद दिखाते हैं। ये दोनों दार्शनिक विमर्श ज्ञान को विकल्पमूलक मानते हैं तथा निर्विकल्पक विज्ञप्ति का स्वलक्षण सत् से साक्षात् (अव्यवहित) संबंध देखते हैं। परंतु काण्ट द्वारा अव्यवहितत्त्व को साध्य रूप में न देखने के कारण विकल्पात्मक ज्ञान को नकारा नहीं जा सका। इसके अतिरिक्त काण्ट जिस संवेद को निर्विकल्पक रूप में विलक्षण

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

सत् के साथ अव्यवहित संबंध में देखता है उसी को नैतिक कर्म के संबंध में सत् की सिद्धि में बाधक रूप में भी देखता है। संवेद को इन विपरीत रूपों में देखने का कारण काण्ट द्वारा ज्ञेय और साध्य को परस्पर असम्बद्ध क्षेत्रों के रूप में देखना है। ये विरोध विकल्प की संकल्पना में भी दिखता है। जो विकल्प ज्ञान विधा में निर्विकल्पक को विषय रूप में ग्रहण करता है वही साधनात्मक विधा में नैतिक नियम का उद्घाटन करता है। शल्य जी के अनुसार इस विसंगति के पीछे काण्ट की संरचनात्मक दृष्टि का उसकी अभीप्सा दृष्टि से गहनतर और व्यापक होना है। उसकी अभीप्सा दृष्टि आधुनिक विज्ञान और ईसाई चिंतन का मिश्रण है जबकि संरचनात्मक दृष्टि ग्रीक, ईसाई और डेकार्ट तीनों में व्याप्त है (शल्य, यशदेव शल्य समग्र, 2017, पृ. 79)। काण्ट ने ईसाई जगत् से भिन्न संवृत सत् को विकल्पमूलक माना है और विलक्षण सत् को विकल्प के लिए अग्राह्य माना है। देह, इंद्रिय और बुद्धि की उपाधियों से परे जाकर ही मनुष्य के परमार्थ स्वरूप (चित्–सत्) को जाना जा सकता है। यह दृष्टि विषय ज्ञान और मूल्यान्वेषण की तार्किक संरचना से उत्पन्न हुई है। परंतु इसका सामंजस्य भौतिक विज्ञान और ईसाई नैतिक बोध में मूलित दृष्टि से नहीं हो सकता है। क्योंकि :

1. विकल्प निर्विकल्पक पर आधारित हो यथार्थ जगत् का ग्राहक बनता है।
2. व्यक्ति अपनी उपाधियों के साथ अक्षुण्य हो जाता है, तथा
3. बुद्धिमूलक नैतिक नियम निरुपाधिक सत् बन जाते हैं।

उपर्युक्त तीनों का समर्थन काण्ट की तार्किक संरचना दृष्टि नहीं कर पाती। शल्य जी के अनुसार दिङ्नाग इस विसंगति से बचने में सफल रहा। विकल्प ज्ञान सत् का प्रापक नहीं है, सत् निर्विकल्पक ज्ञान का विषय है। ज्ञान और सत् दोनों की विलक्षणता समस्त विकल्प ज्ञान को निरसित करने का कारण बनता है। 'सत् अनभिलाप्य है और अभिलाप्य असत् है' की तार्किक संरचना सर्वथा सुसंगत है जिससे विकल्पशून्यता (निर्वाण) की दशा दार्शनिक अभीप्सा का मूल बनती है। इस प्रकार शल्य जी तुलनात्मक दर्शन द्वारा दार्शनिक संरचनाओं की आधारभूत समानताओं को स्पष्ट करके दार्शनिक अभीप्साओं में आधारभूत भेद दिखाते हैं।

दार्शनिक दृष्टियों में भेद का निदर्शन उनकी तार्किक संरचना और अभीप्सा में भेद के आधार पर किया गया है। पूर्व और पाश्चात्य के कुछ उदाहरणों के बाद शल्य जी एक ही संस्कृति में उपजे दर्शनों के बीच तुलना करने की बानगी प्रस्तुत करते हैं। एक संस्कृति की उपज होने के कारण

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

अभीप्सागत भेद की संभावना क्षीण होती है। जैसे समस्त भारतीय दर्शन आत्यंतिक दुखनिरोध या परमार्थ सिद्धि को अंतिम साध्य मानते हैं। ऐसी दशा में भेद मूलतः संरचनात्मक होता है। जैसे परमार्थ को परम साध्य मानने के अर्थ में सांख्य, शून्यवाद और शंकर एकमत हैं परंतु उनमें मानव और जगत् के अधिष्ठान संबंधी संरचना में मौलिक भेद है। इसी प्रकार सांख्य और शंकर सत्कार्यवादी होते हुये भी क्रमशः परिणामवाद और विवर्तवाद को मानते हैं। अविद्या के अधिष्ठान की स्वीकृति में भी भेद है। जगत् को जड़ प्रकृति में अधिष्ठित देखने के कारण सांख्य इसे प्रायः रूपवान या भावरूप मानने में उतना संकोच नहीं करता जितना शंकर या नागार्जुन करते हैं।

अपने विश्लेषण को सूत्रात्मक ढंग से रखे हुये शल्य जी कहते हैं कि "दर्शन की आदिम आधार–संरचना विचारात्मक चैतन्य की प्रत्यङ्मुख वृत्ति है जो सामान्यतम प्रत्यय के माध्यम से अवधारण या ग्रहण करती है" (शल्य, यशदेव शल्य समग्र, 2017, पृ. 85)। इस आत्मोन्मुख व्यापार की अर्थवत्ता इसके मानवीय सरोकार से संबन्धित होने में परिलक्षित होती है। ये सरोकार विभिन्न दर्शनों में विशिष्ट अभिव्यक्तियाँ पाते हैं। यहाँ तुलनात्मक दर्शन का मुख्य ध्येय यह देखना प्रस्तावित है कि विभिन्न संस्कृतियों में विकसित दार्शनिक दृष्टियों में आदिम संरचना तथा आदिम अभीप्सा की अभिव्यक्तियाँ किस प्रकार भिन्न हो रही हैं। इस प्रयास में किसी संस्कृति विशेष में विकसित दर्शन का गहन अध्ययन करके अन्य संस्कृति में विकसित दर्शन में यह भी देखना है कि उस दर्शन के विचारक अपने सांस्कृतिक और व्यक्तिगत पूर्वाग्रहों के कारण किन आयामों का और संभावनाओं का साक्षात्कार नहीं कर पाये हैं। ऐसा प्रयास ही विभिन्न संस्कृतियों के बीच परस्पर संवाद स्थापित करने में सफल होगा। शल्य जी के अनुसार बौद्ध दृष्टि के चीनी और जापानी संस्करण इसके स्पष्ट उदाहरण हैं जहाँ पर पूर्व से प्रचलित विचारों के साथ बौद्ध विचारों का यथोचित समन्वय किया गया है।

तुलनात्मक दर्शन के संबंध में शंकाओं और संभावनाओं पर विचार करते हुये शल्य जी कहते हैं कि प्रत्ययों और विचारों को उनके जीवंत परिवेश से निकालकर यंत्रवत साथ बैठाने में सारहीनता और अस्पष्टता की दशा बन सकती है। चूँकि प्रत्येक दर्शन में वस्तुनिष्ठ सत्ता के ज्ञान की अभीप्सा निहित होती है, उनमें तुलना करने में अनुपयुक्त उच्च या निम्न जैसी मूल्यात्मक योजना की प्रवृत्ति हो सकती है। इन शंकाओं का समाधान

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

दर्शन की सुसंगत तार्किक योजना में है। तुलनात्मक धर्म के विपरीत तुलनात्मक दर्शन एक दर्शन होता है जहाँ किसी विचार की प्रतिष्ठा के मूल में तार्किक सुसंगतता है। साथ ही तुलनात्मक दर्शन के माध्यम से स्वयं की दार्शनिक अभीप्सा और संरचना में स्पष्टता आती है जिससे संवाद के अन्य अवसरों की पृष्ठभूमि बनती है। इसके माध्यम से वस्तुनिष्ठ सत् के अनुसंधान में समन्वित दृष्टि का विकास अपेक्षित है। इसके लिए अनेक विचार परम्पराओं को ऐतिहासिक दृष्टि से देखना उपयोगी होता है।

दर्शन एवं संस्कृति विभाग
श्री माता वैष्णो देवी विश्वविद्यालय,
कटड़ा (संघशासित जम्मू-कश्मीर)

सन्दर्भ एवं पाद टिप्पणी –

ऑन फिलोसोफिकल सिंथेसिस. (1951). "फिलोसोफी ईस्ट एण्ड वेस्ट, ए क्वार्टर्ली जर्नल ऑफ ओरिएंटल एण्ड कांपरेटिव थॉट, 1(1), 3–5.

तिवारी, अनिल कुमार (2018). तुलनात्मक दर्शन की व्यावहारिक उपादेयता, दार्शनिक त्रैमासिक, 64 (1), 27–34.

तिवारी, देवेन्द्र नाथ (2008). दि सेंट्रल प्रॉब्लेम्स ऑफ भर्तृहरीज फिलोसोफी, नई दिल्ली, भारतीय दार्शनिक अनुसंधान परिषद्.

देवराज, नन्दकिशोर (1967). फिलोसोफी एंड कम्पैरटिव फिलोसोफी. फिलोसोफी, ईस्ट एंड वेस्ट, 17 (1/4), 51–59.

भट्टाचार्य, कृष्णचन्द्र (2008). स्टडीज इन फिलोसोफी. (गोपीनाथ भट्टाचार्य, सम्पा.), मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, दिल्ली

मण्डल, प्रभुनारायण (2018). तुलनात्मक दर्शन की आवश्यकता.दार्शनिक, त्रैमासिक, 64 (1), 9–19.

मेसन–औरसेल, प., –मैकार्थी, ह. इ. (1951). द्रू फिलोसोफी इज कंपैरिटिव फिलोसोफी. फिलोसोफी ईस्ट एंड वेस्ट, 1(1), 6–9.

शल्य, यशदेव (2017). मानवीय सर्जना की तत्त्वमीमांसा : चित् और मूल्य (खण्ड–2). (अम्बिकादत्त शर्मा, सम्पा.) नई दिल्ली : डी. के. प्रिंटवर्ल्ड.

शल्य, यशदेव (2017). मानवीय सर्जना की तत्वमीमांसा : ज्ञान और सत् (खण्ड–1). (अम्बिकादत्त शर्मा, सम्पा.) नई दिल्ली : डी. के. प्रिंटवर्ल्ड.

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पुस्तक-समीक्षा

भारतीय मानस के वि-औपनिवेशीकरण की वैचारिक कार्ययोजना*

वेद मित्र शुक्ल

वर्तमान परिदृश्य को ध्यान में रखते हुए भारतीय चिंतन की दिशा और दशा के निर्धारण की प्रक्रिया में भारतीय मानस की सतत एवं सार्थक व्याख्याएँ एक नहीं अनेक स्तरों पर समय–समय पर करते रहने की आवश्यकता सदैव बनी रहती है। इस हेतु विशेष रूप से भारतीय संदर्भों में नचिकेता सदृश सत्यान्वेषी, दार्शनिक, परिपृच्छाधर्मी आदि दृष्टियों से युक्त अध्येता महत्त्वपूर्ण है। साथ ही, अध्येतावृत्ति के फलस्वरूप उपजे चिंतन–मनन का परा, पश्यन्ति और मध्यमा तक ही न सीमित रहते हुए बैखरी के स्तर पर फलीभूत होना तो आज के समय में अति आवश्यक प्रतीत होता है। एक अन्य प्रसंग में इसी बात को हिंदी भाषा और साहित्य के परिप्रेक्ष्य में हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी कुछ इस प्रकार से कहा था कि विद्वान् चिंतकों की कोई कमी नहीं है, लेकिन विद्वान् लेखकों की भारी कमी है। दर्शन, संस्कृति, धर्मशास्त्र, भाषा दर्शन आदि जैसी ज्ञान की शाखाओं में जटिलताओं से मुक्त, व्यवस्थित, गम्भीर परन्तु, संप्रेषणीय साहित्य की उपलब्धता की स्थिति और भी चुनौतीपूर्ण है। ऐसे वातावरण में जब संस्थागत और व्यक्तिगत दोनों ही स्तरों पर जिम्मेदारी के साथ साहित्य निर्माण के कुछ प्रयास किये जाते हैं तो उन्हें सुदीर्घ भारतीय ज्ञानपद्धति एवं परम्परा में किसी उपलब्धि से कम नहीं माना जाना चाहिए। सेतु प्रकाशन और रजा फाउन्डेशन के संयुक्त तत्वाधान में प्रकाशित अम्बिकादत्त शर्मा कृत "भारतीय मानस का वि–औपनिवेशीकरण : प्रामाणिक संस्कृतात्मा के प्रत्यभिज्ञान की कार्ययोजना" इस दृष्टि से एक उल्लेखनीय वैचारिक उपक्रम है।

उन्मीलन – वर्ष 36, अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2022

ISSN-0974-0053

U.G.C. Care List : Arts & Humanities, SI.No. 310

*अम्बिकादत्त शर्मा, भारतीय मानस का वि–औपनिवेशीकरण, सेतु प्रकाशन व रजा फाउण्डेशन, दिल्ली, पृष्ठ : 112; मूल्य– 225 / –

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

समकालीन भारतीय दर्शन में 'भारत के वैचारिक स्वराज और राष्ट्रभाषा के राजपथ पर दर्शन के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान एवं प्रगत शोधपरक गवेषणाओं के लिए' सुविख्यात दार्शनिक कृतिकार अम्बिकादत्त शर्मा की इस कृति में उनके तीन व्याख्यानों को अध्यायों में क्रमशः "भारतीय संस्कृतात्मा का वि–औपनिवेशिक प्रत्यभिज्ञान," "स्वातंत्र्योत्तर भारत में वि–औपनिवेशीकरण के मूलभूत अर्थ–संदर्भ," और "वि–औपनिवेशीकरण, वैचारिक स्वराज और भाषाई राजपथ" शीर्षक से पढ़े जा सकते हैं। इन संकलित व्याख्यानों के साथ विद्वान् दार्शनिक कृष्ण चन्द्र भट्टाचार्य का शोधपरक और अंतर्दृष्टि से युक्त आलेख "विचारों में स्वराज" को भी परिशिष्ट के रूप में शामिल किया गया है जो वास्तव में उनके प्रसिद्ध आलेख 'स्वराज इन आइडियाज' का बहुत अच्छा हिन्दी अनुवाद है।

"भारतीय संस्कृतात्मा का वि–औपनिवेशिक प्रत्यभिज्ञान" शीर्षक से पुस्तक के पहले अध्याय में 'सांस्कृतिक आत्म में पुनः प्रतिष्ठ' होने के उद्देश्य से वि–औपनिवेशीकरण को पुरोगामी प्रक्रिया मानते हुए यूरोपीयकरण को प्रमुख चुनौती माना गया है। आधुनिकता के मुखौटे में यूरोपीयकरण जो कि एक सांस्कृतिक–साभ्यतिक प्रक्रिया है 'आज एक बलीयसी विश्व–सभ्यता का रूप अख्तियार कर लिया है।' इस संदर्भ में लेखक लिखता है, "भारत को उसके सुदूर अतीत से काटकर 'प्रोजेक्टेड वर्तमान' की दहलीज पर पूँजीवादी यूरोप या फिर समाजवादी यूरोप से प्रतिकृत होने के लिए तैयार किया गया है (पृ.40)।"

बहुत ही स्पष्ट तरीके से यह बात प्रारम्भ में ही लिख दी गई है कि भारत के मूल यानी 'उसके बौद्धिक और आध्यात्मिक वैभव, उसके दर्शन और महान् साहित्यों को' वर्तमान के लिए दूर की कौड़ी सिद्ध करने की लगातार की जा रही कोशिशें औपनिवेशीकरण और यूरोपीयकरण के समर्थकों द्वारा की जा रही है। उन समर्थकों के ऐसे प्रयास को बहुत हद तक षडयंत्र न मानकर उनकी विवशता और उनके ज्ञान की सीमाओं को लक्ष्य करते हुए लेखक लिखते हैं कि भारतीय संस्कृति और सभ्यता अपनी इतिहास–दृष्टि के 'गुण–लक्षणों के चलते यूरोप के लिए सदैव ही विस्मयबोधक बना रहा है। उसकी विश्वदृष्टि के साँचे में यह समायोजित नहीं हो पाता (पृ. 38)।" संकट यह है कि यूरोपीय विवशताओं और यूरोपीय ज्ञान की सीमाओं को भारतीयों ने भी स्वयं पर प्रत्यारोपित हो जाने दिया है।

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

इस प्रकार के सांस्कृतिक संकट से उपजे विसंगति और विडंबनापूर्ण समाज में 'भारतीय संस्कृतात्मा की अभ्रांत समझ' या भारतीयता से ओतप्रोत 'अपने विश्वसनीय सांस्कृतिक आत्म' को हासिल करना और उसमें पुनर्प्रतिष्ठ' होने के लिए लेखक एक कार्ययोजना का आह्वान करता है, और पुस्तक के इस पहले अध्याय में उस कार्ययोजना को 'समष्टि धर्म' अथवा 'राष्ट्रीय स्वधर्म' के रूप में स्थापित किया गया है।

"स्वातंत्रोत्तर भारत में वि–औपनिवेशीकरण" नाम से दूसरे अध्याय में स्वातंत्र्योत्तर भारत के मूलभूत अर्थ–सन्दर्भों को ध्यान में रखते हुए वि–औपनिवेशीकरण की कार्ययोजना को केन्द्र में रखने को स्वधर्म से लेकर राष्ट्रधर्म तक बताया गया है। इस राष्ट्रधर्म को स्वतंत्रता के बाद कितना निभाया जा सका है यह एक बड़ा प्रश्न है, और इसी प्रश्न को खंगालने की प्रक्रिया में सन् सैंतालिस के पहले और बाद के समय से लिए गये संदर्भों की चर्चा दूसरे अध्याय में अनेक स्थानों पर पढ़ी जा सकती है। इसी क्रम में महात्मा गांधी के हिंद स्वराज को एक ऐसे व्यक्ति का 'युद्ध–घोष' बताया गया है "जिसने राजनितिक संकट को भी सांस्कृतिक संकट के ही अंश के रूप में देखा था'' (पृ. 42)। भारत एक सांस्कृतिक राष्ट्र है। राजनीति और संस्कृति के पार्थक्य में 'स्वतंत्र भारत' का सत्व नहीं निहित है। 'स्वतंत्र भारत' का सत्व 1947 में राजनीतिक स्वतंत्रता मिलने के बाद एक स्वतंत्र देश के हृदय की गहराइयों में बसी उत्तर–औपनिवेशिक सांस्कृतिक दासता से मुक्ति पाने में है। इस संबंध में लेखक लिखता है, "इस दासता से मुक्ति पाने के लिए किसी बाह्य शत्रु के विरुद्ध तलवार उठाने की जरूरत नहीं, बल्कि उस बाह्य और संक्रामक यूरोपीय विचार से निजात पाने की जरूरत है; जिसने हम भारतीयों को चारों तरफ से अपने अविचारित मोहपाश में बाँध लिया है (पृ. 44)।"

स्वतंत्रता के पश्चात् उत्तर–औपनिवेशिक सांस्कृतिक दासता से मुक्त होने के लिए दो प्रकार की संकल्पनाएँ भारत में रही हैं। पहली भारत के नवनिर्माण की और दूसरी पुनर्निर्माण की। इनको ध्यान में रखकर कार्ययोजना की आवश्यकता है। भारत के नवनिर्माण की कार्ययोजना औपनिवेशीकरण को वैधता प्रदान करता है। अतः वि–औपनिवेशीकरण की कार्ययोजना भारत के पुनर्निमाण की ही योजना हो सकती है। साथ ही, इसके लिए स्वातंत्र्योत्तर भारत के स्वरूप को 'परा–ऐतिहासिक' और 'ऐतिहासिक' अर्थ–संदर्भों के परिप्रेक्ष्य में जानना भी अपेक्षित हो जाता है।

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

अध्याय दो में लेखक विस्तार से भारत की स्वतंत्रता के 'परा–ऐतिहासिक' और 'ऐतिहासिक' अर्थ–सन्दर्भ के बीच के अंतर को स्पष्ट करते हैं। तात्कालिक परिस्थितियों से उपजी घटनाओं को जैसे पाकिस्तान के निर्माण को ऐतिहासिक अर्थ के साथ देखा जा सकता है। परन्तु, परा– ऐतिहासिक आधार से "भारत की पराधीनता वास्तव में भौगोलिक सीमाओं में आबद्ध एक देश की पराधीनता नहीं थी बल्कि एक सम्पूर्ण सभ्यता और संस्कृति की पराधीनता थी। वह भी ऐसी सभ्यता और संस्कृति जिसके लिए मान, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, मद्–मत्सरादि उन सभी मानव–प्रवृत्तियों से भी मुक्ति काम्य है जिसे अन्य सभ्यताएँ न्यूनाधिक रूप में मानव–स्वभाव अथवा मनुष्य का सत्य समझती हैं (पृ. 47)।" यह भारतीय सभ्यता और संस्कृति का परा–ऐतिहासिक अर्थ–सन्दर्भ ही है जिस कारण से पाकिस्तान के निर्माण के आधार "धर्माधारित द्विराष्ट्र सिद्धांत" को न स्वीकार करते हुए शेष भारत को हिन्दूराष्ट्र के रूप में भारतीयों ने स्वीकार नहीं किया। वास्तव में वे वैसा कर भी नहीं सकते थे, क्योंकि तब वह उनकी आत्मा और सांस्कृतिक प्रकृति के सर्वथा प्रतिकूल होता। यदि वे वैसा ही करते तो अन्यों की तरह 'हिन्दू' एक मजहबी धर्म का ही दर्जा पाता, एक 'हिंदुत्व–संस्कृति' का नहीं जिसमें अन्य मतावलम्बी भी समान रूप से समादृत और भागीदार होते हैं (पृ. 47)।

परा–ऐतिहासिक अर्थ–संदर्भों के साथ भारत के पुनर्निर्माण की कार्ययोजना पर बल देते हुए व्यापक स्तर पर 'भाष्यधर्मी भावी योजना' की चर्चा की गई है। 'भाष्यधर्मी भावी योजना' यानी "पुरातन के उच्छेद और नवीनता की आमूल उपस्थापना रूप विचारों के प्रवर्तन से नहीं बल्कि वर्तमान के व्यापक परिप्रेक्ष्य में पुरातन की पुनःरचना और इस प्रकार उसकी समीचीन प्रस्तुति है (पृ. 51)।" भाष्यधर्मी अभियान में भारत के मूल में प्रवाहमान 'एकात्मक सांस्कृतिक धारा' जैसी विशेषताओं को न समझकर पश्चिमीकरण और यूरोकेंद्रित मिशन में सहभागी बन जाना भारत के पुनर्निर्माण की कार्ययोजना में बहुत बड़ी बाधा रही है। इस संदर्भ में आधुनिक भारत के निर्माण के नाम पर राजनीति व समाज–सुधार करने वालों को भी दूसरे अध्याय में लेखक कटघरे में खड़ा करने से नहीं चूकता है।

पुस्तक का तीसरा अध्याय प्रमाणिक संस्कृतात्मा के प्रत्यभिज्ञान की कार्ययोजना से जुड़े तीन प्रमुख विषयों को केन्द्र में रखते हुए "वि–औपनिवेशीकरण, वैचारिक स्वराज और भाषाई राजपथ" उपशीर्षक के साथ प्रारम्भ होता है। देश की आत्मा का प्रत्यभिज्ञान सांस्कृतिक चेतना के

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

धरातल पर ही संभव है। यही कारण है कि राजनीतिक स्वतंत्रता को उसी चेतना के धरातल पर आत्मसात किया जाए। राजनीति, विकास आदि के संबंध में 'आत्मा' के विषय को और अधिक व्याख्यापित करते हुए पुस्तक में यह कहा गया है कि "मनुष्य केवल 'देह' नहीं, अपितु 'आत्मन्' भी है। अतः विकास को आत्मलाभ में भी रूपांतरित किया जाना चाहिए और यह धर्म, परम्परा एवं संस्कृति से अनुप्राणित उपभोग एवं उत्पादन की प्रवृत्ति से ही संभव होता है (पृ. 68)।" इस प्रकार से किसी भी प्रकार का एक विकास सभी देशों के लिए सार्वभौमिक नहीं हो सकता है। विकास का केवल एक वस्तुनिष्ठ रूप संभव ही नहीं है। इस सबके बाद भी यदि ऐसा प्रतीत होता है कि पश्चिमी विकास की पद्धति ने कुछ इस प्रकार से अपना विस्तार किया है कि उसे नकारा नहीं जा सकता है तो ऐसे में लेखक आगे लिखता है, "आज पश्चिमी दृष्टि को पूरी तरह नकारने की जरूरत नहीं है, बल्कि उसे उसकी शर्तों पर नहीं, अपनी शर्तों पर सजगता के साथ आत्मसात करने की जरूरत है। साथ–ही–साथ भारतीय संस्कृति की वैचारिक धरोहर का वास्तविक उत्तराधिकार प्राप्त करने के लिए पश्चिमी ज्ञान–विधाओं को पूरी तरह स्वायत्त कर लेने के उपरान्त सांस्कृतिक आत्मविश्वास की स्वार्जित भूमि पर भारतीय परंपरा का गहरायी से मंथन करते हुए उसे साम्प्रतिक समीचीनता के साथ प्रस्तुत करने की महती आवश्यकता है (पृ. 68)।"

उपरोक्त मन्त्र रूपी समाधान का अनुपालन क्यों न हो सका, उसके पीछे का एक मुख्य कारण 'भाषिकीय स्वराज' को न प्राप्त कर पाना है। पुष्ट 'वैचारिक स्वराज' तो 'भाषिकीय स्वराज' के बिना संभव ही नहीं है और ये 'पूर्ण स्वराज' के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। इस संबंध में नुगी वा थ्योंगो के एक पत्र से जुड़े प्रसंग और पोप व एक भारतीय पादरी के संवाद के माध्यम से लेखक बताता है कि भाषायी औपनिवेशिक मनोवृत्ति किस प्रकार से पूर्ण वैचारिक स्वराज में बाधक है। इसी क्रम में वह आगे भी प्रश्न खड़ा करते हुए कहता है, "क्या शंकर की तुलना हेगेल एवं ब्रैडले, नागार्जुन की तुलना कांट और यहाँ तक कि देरिदा से, कालिदास की तुलना शेक्सपीयर से और उससे भी आगे बढ़ कर जब–जब यूरोप में जिन–जिन ज्ञान विधाओं का फैशन रहा उन–उन की पूरे भारतीय वांग्मय में सतही अनुरूपता खोजना हमारी अजीबोगरीब औपनिवेशिक मनोवृत्ति को नहीं दर्शाता (पृ. 70)?"

निष्कर्ष के रूप में तीसरे अध्याय के अंत में कहा गया है, "जिन्हें भारत की नियति पर विश्वास है कि भारत अक्षय अध्यात्मविद्या का स्रोत है, उनके

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

लिए यह अनिवार्य है कि स्वतंत्रता के पूर्व उजागर हुए उस मार्ग पर चलना बंद न करें और भारतीय परम्परा के प्रश्न को आजकल के परिवेश में फिर से जाँचें।... भाषिक स्वराज और भाष्यधर्मी अभियान को क्रियान्वित करें ताकि राष्ट्रीयता, परम्परा, आध्यात्मिकता और भाषा का चतुर्भुज प्रकट हो सके (पृ. 85)।" इसी के साथ पश्चिमी अनुभव और अस्मिता से मुक्त होकर भारतीय अनुभव और अस्मिता से युक्त सांस्कृतिक जीवन की साधना पर भी लेखक ने बल दिया है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि औपनिवेशीकरण और उत्तर–औपनिवेशीकरण के कारण हुए सनातन भारत के तीन प्रमुख आत्मविभाजनों; जिनमें पहला, समृद्धशाली भारतीय अतीत का विस्मरण करा देने वाला विभाजन, दूसरा, राजनीति और संस्कृति को अलग–अलग कर देने वाला विभाजन, और तीसरा, भाषा की भारतीय संकल्पना को विखंडित कर देने वाला अंग्रेजी दुश्चक्र को भारतीय मानस के वि–औपनिवेशीकरण द्वारा ही पाटा जा सकता है। पुस्तक में वि–औपनिवेशीकरण के मुख्य उपकरण भाषिकीय स्वराज से वैचारिक स्वराज और फिर पूर्ण स्वराज एवं भारत का पुनर्निर्माण को साधते हुए भाष्यधर्मी कार्ययोजना का मुखरता, स्पष्टता एवं सत्यता के साथ प्रतिपादन किया गया है। एक सुदृढ़ कार्ययोजना की आवश्यकता को स्थापित करने के साथ–साथ प्रामाणिक संस्कृतात्मा के प्रत्यभिज्ञान की वैचारिक कार्ययोजना प्रस्तुत करना दार्शनिक लेखक अम्बिकादत्त शर्मा की पुस्तक "भारतीय मानस का वि–औपनिवेशीकरण : प्रामाणिक संस्कृतात्मा के प्रत्यभिज्ञान की कार्ययोंजना" का महत्त्वपूर्ण प्रतिपाद्य रहा है। यह पुस्तक भारत की नियति और आत्मप्रतिमा को उदारवादी पूँजीवादी यूरोप अथवा मार्क्सवादी समाजवादी यूरोप या फिर साम्प्रतिक हिन्दू पुनरोत्थान वाद में न देखकर सनातन भारत के सात्विक और अविकृत सत्वों के पुनराविष्कार में देखती है। सनातन भारत का ऐसा पुनराविष्कार न केवल आधुनिक भारत के लिए अपितु आधुनिकता के 'प्रिजनर्स डायलेमा' से मानवता को मुक्ति दिलाने के लिए भी आवश्यक है।

एसोसिएट प्रोफेसर, अंग्रेजी विभाग,
राजधानी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय,
राजा गार्डन, नई दिल्ली - 110015

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

CC0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

आज़ादी का
अमृत महोत्सव

ISSN 0974 0053

CC-0. In Public Domain. Prof. Ambika Dutt Sharma, Varanasi Collection